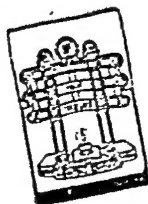
कगार की आग

*

हिमांशु जोशी



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्यांक ३९५
सम्पादक एवं नियोजक
लक्ष्मीचन्द्र जैन
जगदीश

प्रथम संस्करण : जनवरी १९७६



कगार की आग

(उपन्यास)

हिमांशु जोशी

प्रथम संस्करण
मूल्य : छह रुपये

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
बी/४५-४७, कॅनॉट प्लेस,
नयी दिल्ली-११०००१

मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग,
वाराणसी-२२१००५

Publisher
BHARATIYA JNANPITH
B/45-47 Connaught Place
NEW DELHI-110001

First Edition : Price Rs 6/-

KAGAR KEE AAG : Novel : Himanshu Joshi
Lokodaya Series : Title No. 395
Price : Rs 6.00

कगार की आग

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक ३९५
सम्पादक एवं नियोजक
लक्ष्मीचन्द्र जैन
जगदीश



प्रथम संस्करण : जनवरी १९७६

कगार की आग

(उपन्यास)

हिमांशु जोशी

प्रथम संस्करण
मूल्य : छह रुपये

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
बी/४५-४७, कॅनॉट प्लेस,
नयी दिल्ली-११०००१

मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग,
वाराणसी-२२१००५

Publisher
BHARATIYA JNANPITH
B/45-47 Connaught Place
NEW DELHI-110001

First Edition : Price Rs 6/-

KAGAR KEE AAG : Novel : Himanshu Jo
Lokodaya Series : Title No. 395
Price : Rs 6.00

उन सबको
जिनकी यह कहानी है।

आरम्भ में

गाँव की कहानी है यह। गाँव का नाम कुछ भी हो सकता है। किसी भी नाम से पात्रों को सम्बोधित किया जा सकता है। क्या अन्तर पड़ता है इससे ? यह उन अभिशप्तों की जीवन-गाथा है, जो समाज द्वारा बहिष्कृत किये गये हैं, सदा के लिए तिरस्कृत !

सच पूछें तो दुख की साकार, सदेह प्रतिमाएँ हैं ये। दर्द के जीते-जागते पुतले ! गोमती, पिरमा, खिमु'का : ये सारे चित्र यन्त्रणाओं की स्याह-सफ़ेद रेखाओं से चित्रित किये गये हैं, काल की तूलिका से !

वृद्ध खिमु'का आज भी जीवित हैं : इस व्यथा-कथा के साक्षी। वित्ते-भर की चौरस भूमि की ओर इंगित कर कहते हैं : "हाँआ, यहीं पर थी वह झोंपड़ी, दो भाई रहते थे जहाँ। बड़े का नाम पिरमा था और छोटे का....।" इससे अधिक कुछ न कहकर, न जाने किस दृष्टि से शून्य में ताकते रहते हैं !

यहाँ अब ऊँची-ऊँची घास, सिसुड़े के कँटीले पौधे उग आये हैं। फँइयाँ का नन्हा-सा नाज़ुक बिरवा रेत की दीवार के उस पार झाँक रहा है।

आज भी दिन-रात धौंकनियाँ चल रही हैं। ठण्डा लोहा तप रहा है। गरम लोहे पर ठण्डे लोहे का आघात। आग के छींटे बिखर रहे हैं।

दूर कहीं अन्धकार में एक मानवाकार छाया-सी आज भी कभी-कभी उभरती दिखलाई देती है तो लोग दहशत से घरों के किवाड़ मूँदकर छिप जाते हैं।

गोमती की यह सच्ची कहानी मैंने सच-सच नहीं लिखी। यदि सच लिखता तो लोगों को सच न लगती। इसलिए इनकी अन्तहीन यन्त्रणाओं को कहीं-कहीं से कम करने का अपराध-भर मैंने अवश्य किया है, ताकि यह सच्ची कहानी झूठी न लगे।

गोमती अब कहाँ है ?

कुन्नू का क्या बना ?

मुझे स्वयं पता नहीं। हां, कुछ दिन पहले उस गांव अवश्य गया था, जहां गोमती रहती थी कभी। उसकी वृद्धा मां का अभी-अभी देहान्त हुआ है। लोगों से गोमती के विषय में पूछा तो कुछ भी पता न चला। गांव के कुछ पढ़े-लिखे लोगों को अवश्य शिकायत थी कि मैंने उनके गांव की अन्तरंग बातें जगजाहिर क्यों कीं ? अखबार में क्यों लिखा ? गोमती के चरित्र पर लांछन क्यों लगाया ?

गोमती के चरित्र पर लांछन की भूल मैं कैसे कर सकता हूं ? वह तो किसी भी सती-सावित्री से ऊंची थी !

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में जब यह उपन्यास छपा तो पाठकों के ढेर सारे पत्र मिले। गांव की इस सीधी-सादी कहानी में ऐसा क्या है, जो पाठकों को कहीं इतना गहरा छू रहा है—मेरी समझ में यह बात अब तक नहीं आयी। 'छाया मत छूना मन' के पश्चात् मेरे लिए यह एक और आश्चर्य है !

इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूं कि साधारण पाठकों के साथ-साथ प्रबुद्ध लोगों को भी उनकी यह कहानी रुचिकर लगी। पाठकों का जो अपरिमित स्नेह मुझे मिला, वह किसी भी लेखक के लिए ईर्ष्या का विषय बन सकता है।

साहित्य को मैंने मात्र मनोरंजन के लिए नहीं, मिशन के रूप में लिया है। मेरा प्रयास रहा है कि असंख्य यन्त्रणाओं से घिरे गूंगे आदमी को स्वर मिले। मेरा दुःख-दर्द उनके दुःख-दर्द से अलग कहां है ? वस्तुतः उनके माध्यम से मैंने अपनी व्यथा को वाणी देने की कोशिश की है।

इन विवश लोगों की व्यथा आपको कुछ सोचने के लिए विवश करे तो समझूंगा कि मेरा प्रयास विफल नहीं रहा।

[illegible]
[illegible]
[illegible]

—हिमांशु जोशी

सास उसका झोंटा पकड़कर बाज की तरह झपटी थी, "जानजोति रांड, सौ घर का जूठन खाकर यहाँ चली आयी है ! नंगी, नौंहाल ! एक खसम खा चुकी है बेशरम ! गोदलि कहती थी—जलेबी के दोने खाती है ! जंगल के चौकीदार पतरोल के साथ कल वन में कहाँ जा रही थी ? घोड़िया-डाकटर से क्या बातें कर रही थी ? हमारी इज्जत तूने मट्टी में मिलाकर रख दी। अजब का जोबन चढ़ा है तुझपर रण्डी !"

लातों से, घूंसों से गोमती चुपचाप पिटती रही। धरम राम सरपंच गांव न आये होते तो शायद सब मिलकर, उसे जान से ही मार डालते, पर उन्होंने किसी तरह बीच-बचाव कर छुड़ाया था।

पिरमा घुटने मोड़े बैठा था—गूंगे मिट्ठू की तरह। माँ को यों पिटते देख कुन्नू दीवार से सटकर छिप गया था। भय से आतंकित रो भी न पा रहा था....।

पुराने पयाल की झीनी झोपड़ी के एक कोने में पड़ी गोमती नन्हे कुन्नू को कलेजे से लगाये सिसकती रही और पास ही पड़ा पिरमा सारी रात खों-खों खांसता रहा था।

गोमती किससे कहती ? कौन सुनता उसकी कि 'घोड़िया-डाकटर' से वह पति के लिए दवा लेती है। उससे और कोई सम्बन्ध नहीं। जंगल में साल-भर से उसने पतरोल की सूरत तक नहीं देखी। गांव की औरतों के साथ घास काटने जंगल गयी, उन्हीं के साथ लौटी। फिर गोदलि ने उसे कहाँ देखा ? कब ? बेशरम खुद ही पतरोल से बीड़ी मांग-मांगकर पीती थी। इसी बरसात में एक दिन अपनी आंखों से उसने गोदलि को देखा था—बीच वन में स्थित लीसेवालों की काठ की कोठरी से बाहर निकलते हुए। घाघरी का नाड़ा भीगा था....।

परन्तु देखकर भी अनदेखा कर दिया था गोमती ने !

कहीं गोमती किसी से कुछ कह न बैठे—इस भय से शायद गोदलि ने पहले ही उसपर लांछन लगा दिया हो ! पर, अब इन लोगों को क्या हो गया है ?

अन्धकार में उसके सामने ककिया ससुर—कलिय'का का डरावना चेहरा घूमने लगा। शराबियों की जैसी बड़ी-बड़ी लाल आँखें! घनी मूँछें!

पिरमा से सौ वार कह चुकी है—"तुम्हारे कका की नज़र अच्छी नहीं। इनके मन में पाप उपज गया है। बड़ी गन्दी निगाह से देखते हैं!"

लेकिन पिरमा ने हमेशा की तरह जैसे इस वात को भी सुना नहीं, "तू तो निरी वावली है! इतने बूढ़े पर शक करती है! तुझे पाप लगेगा। परलोक विगड़ेगा तेरा। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे? विना वात थू-थू!"

यह सुनकर गोमती मन मसोसकर रह गयी थी। पिरमा पागल है—परमहंस—निरीह पशु! सवको पता है। कका वैल की तरह जिन्दगी-भर उसे जोते रहे। जवतक एक परिवार में रहे, खाना भी कभी भर पेट न दिया। रूखा-सूखा, जूठा-पीठा, टूटी-फूटी थाली में फेंक दिया। पहनने के लिए अपने वेटे तेजुवा के उतारे चीथड़े!

इधर कुछ दिनों से अक़ल शायद कुछ अधिक मारी गयी है बुढ़ऊ की। पिरमा को रोज़ रात को आलू के खेतों की रखवाली के लिए भेज देते हैं। उसकी सारी रात 'आ लो लो लो, छेपो-छेपो! हाड़्च-अ! हाड़्च-अ!' कर शौली को भगाने में ही वीत जाती है। पल-भर के लिए भी आँख लगी नहीं कि सारा का सारा खेत चौपट....!

जव सव सो जाते हैं, सारा गाँव मशान-सा सूना हो जाता है, बूढ़े ककिया ससुर कलिया अंधियारे में दवे पाँव उसकी टूटी झोपड़ी के झीने कपाट टटोलने लगते हैं। दो-तीन वार वह दुत्कार चुकी है, पर कुत्ते की तरह फिर-फिर मुड़कर देखने से वाज़ नहीं आते!

परसों रात जव किवाड़ खोल ही लिये तो उसे कुछ सूझ न पाया कि क्या करे? सिरहाने पर रखी हँसिया उसने अन्धकार में फेंककर दे मारी! तव कहीं दुम दवाकर भागे निरलज्ज!

सुवह किसी ने पूछा, "कलिय'का, माथे पर चोट कैसे लगी?" तो कहते थे—"पाँव फिसल जाने से गिर पड़ा यार! अंधियारे में अव विलकुल आँख नहीं देखता!"

तब से बदला लेने की ताक में थे और वह भी कल ले ही लिया। पत्नी को निमन्त्रण कर तैयार किया। गोदलि को गुड़ खिलाया और फिर रचा यह महाभारत....!

आग के पास उसे लिटाकर अम्मा दुखते घावों को गरम कपड़े से सेंकती रही। खाने के लिए आज कुछ भी न था घर में। तवे में गरम राख डालकर, सोयाबीन-भट्ट के कुछ दाने भूनकर दोनों ने चबा लिये और ऊपर से लोटा-लोटा-भर ठण्डा पानी गटककर आँखें मूँद लीं। बूढ़ी माँ के हाथ-पैर अब अधिक चल न पाते थे। इसलिए दो वक्त की रोटी का जुगाड़ भी सम्भव न रहा था। महीने में कई-कई 'एकादशियाँ' हो जातीं।

पता नहीं रात का कौन-सा पहर बीत रहा था? बुझी आग के पास गुदड़ी में लिपटी गोमती को नींद न आ पा रही थी। इतनी बड़ी दुनिया में उसे कहीं, कोई ठौर नजर न आ रही थी। पति पगला—विक्षिप्त। न सास, न ससुर। एक देवर—वह भी लाम में। मैके में दुखड़े रोने के लिए अकेली, बूढ़ी विधवा माँ। आज मरी कि कल!

कई बार आत्महत्या का विचार आया। सोचा—कुल्ल के आकाश को को छूते ऊँचे पेड़ पर रस्सी बाँधकर लटक जाये। हजार झंझटों से छुट-कारा मिल जायेगा, पर कुछ का निरीह चेहरा बीच में दीवार की तरह आ खड़ा होता। नन्हे-नन्हे हाथ! दुधिया दाँत। वह छटपटा पड़ती—अन्धकार में कुछ टटोलती हुई।...सिरमा के ठूँठ-से काले हाथ उसका फटा आँचल पकड़ लेते....!

उसे पता है—[illegible] क्या चाहते हैं—

गोमती किसी के साथ कहीं भाग जाये या नदी में डूब मरे और सिरमा मरोड़े हुए गुलाम की तरह जिन्दगी-भर उसकी चाकरी करे। वह मरे तो उसके हिस्से की जमीन 'वारिस' बनकर स्वयं हथिया ले। मकान के दरवाजे तीन खेत उसी के पास तीन बीघा खाते में लगे पड़े हैं—सिरमा की माँ के खानदान के सबब से! और भी बहुत कुछ है, हथियाने के लिए!

तेजुवा उस दिन पोखरी की दुकान में डंके की चोट कहता था—"पिरमुआ पागल मरे तो गोमती राँड़ को अपने घर में रख लूँगा...!"

अपना रूप अपने को ही अभिशाप लग रहा था उसे। गोमती सोचती रही कि नोच-नोचकर अपना चेहरा कुरूप कर ले। देवदार के जलते छिलके से झुलस ले। परमेसर भी कितना निठोर है? इतना रूप उसे न देता तो आज यह सब न भुगतना पड़ता....! बाहर के ही नहीं, घर के भीतर के भी सब दुश्मन हो गये हैं!

"अभी सोयी नहीं गोमु?" माँ ने करवट बदलते हुए पूछा।

"नींद नहीं आ रही इजा!" गोमती ने यों ही उखड़े-उखड़े स्वर में उत्तर दिया।

"तेरे देवर देविया की लाम से कोई चिट्ठी-पतरी आयी?"

"इधर बहुत दिनों से कुछ नहीं। माघ-फागुन में एक चिट्ठी जरूर मिली थी। तुलिया बतला रहा था कि किसी दूसरी जगह बदली हो गयी है। तब से कुछ नहीं।"

"पैसा-पाई तो फिर क्या भेजा होगा?"

"द, कहाँ से? पहले दो-तीन महीने में नोन-तेल के लिए कुछ भेज ही देते थे, पर अब वह भी नहीं। हमारी जान को तो ये दुसमन लग गये हैं। कौन जाने किसी ने कोई ऐसी-वैसी चिट्ठी भेज दी हो!" वह चुप हो गयी, कहती-कहती।

"मल्ले घर ठुल कका की लड़की का कुछ पता-पानी मिला इजा?" गहरा मौन तोड़ती हुई गोमती बोली।

"कहाँ चला?" माँ ने अनिच्छा से उत्तर दिया, "कहते हैं टनकपुर में किसी नाई के घर बैठ गयी है!"

ठुल कका की लड़की धरी और गोमती कभी सच्ची सहेलियाँ थीं। देवीधूरे के मेले में उस साल वे साथ-साथ गयी थीं। सारी-सारी रात उन्होंने झोंटे गाये थे! हुड़के की ताल पर थिरकती रही थीं—उड़ती रही थीं हवा में!

कहाँ गये अब वे दिन ?

घुटनों को ठोड़ी से मिलाये गोमती पता नहीं कहाँ भटक गयी थी ?

दो—

गेहुँवे की गरम-गरम काली रोटियों की सौंधी गन्ध ! झीनी झोपड़ी के बाहर ठण्डी धूप का एक टुकड़ा और दाड़िम के पेड़ पर बैठे कौवे की कांव-कांव !

गोमती ने सुबह अचरज से देखा—माँ जग गयी है। सिगड़ी की आँच में ही मोटी-मोटी काली रोटियाँ सेंक रही है।

"आटा कहाँ से आया इजा ?" उसने पूछा।

"पैसा माँगकर लायी। तूने तो कल से कुछ भी खाया न होगा ?"

"मुझे भूख नहीं।"

कुल चार रोटियाँ बनीं। तीन मोटी, एक छोटी-सी सिनोली !

माँ ने उनमें से तीन गोमती के सामने परोस दीं और एक स्वयं चबाने लगी, जैसे सूखे चमड़े का टुकड़ा चबा रही हो ! हरी मिर्च का बिना नमक की पत्ती में रखकर सामने सरका दिया।

"यह क्या ? मैं इतना नहीं खा सकूँगी इजा ?"

"हाय, कल से भूखी है और कल की कतरी-सी दो रोटियाँ भी नहीं !"

गोमती ने इस बार जिद न की। गरम-गरम रोटियाँ क्षण में ही चबाकर नमक के साथ चुपचाप निगलने लगी।

"कुछ तो साग क्यों नहीं ले आयी—?"

"अभी कहाँ पार कैसे करती ? मैं तो साग काटने जंगल गयी थी, वहीं से लौट आयी।"

बाहर आँगन में फटी चटाई बिछाकर दोनों माँ-बेटी बैठी थीं—घाम तापने। धूप तो क्या मिलती, हाँ, धीरे-धीरे काले, उनींदे बादल आकाश पर अपने हाथ-पाँव अवश्य पसार रहे थे।

लोहे के दतखोच्चे से गोमती चुपचाप दाँत कुरेद रही थी। उसके घुटनों पर माँ का सिर था, जिससे जुँए ढूंढ़ रही थी। सफ़ेद बाल मैल से काले पड़ गये थे—घुमरैले। पता नहीं कब से सिर नहीं धोया था!

"ये खेत मिल भी जाते तो इनसे क्या करती?" गोमती कुछ सोचती हुई बोली, "कौन आता इत्ती दूर खेती करने? कुन्नू के पिता की तो हालत ही और है! चिरान पर चले जाते भाभर! यहीं लीसे के काम पर लग जाते! किसी के मकान के लिए पत्थर ही निकालते खदान से, तब भी गुजारा चल जाता। लेकिन उनके तो ढंग ही दूसरे हैं—गुमसुम बैठे रहते हैं, पत्थर की तरह।...उस गाँव में अब मेरा मन ही नहीं लगता इजा! किसी दिन सब छोड़-छाड़कर भाग जाऊँगी, फिर न कहना!"

"चुप, चुप, ऐसा नहीं कहते कुभाखी! कितनी जग-हँसाई होगी? तेरे करम में जो है, उसे भुगत! तू जिए या मरे, तेरे लिए वही एक देहरी है....।"

गोमती के हाथ रुक गये थे। पता नहीं क्या सोचती हुई वह आकाश को देख रही थी। पर माँ बोलती चली जा रही थी—"इस बार तू घर चली जा इजु! फिर मार-पीट करेंगे तो न जाना। मैं भी जिद न करूँगी....। लोक-लाज का भी तो कुछ ख्याल रखना पड़ता है! तेरे बाप को सब भला-बुरा कहेंगे! उनकी आतमा को सरग में दुख होगा....!"

—हम ही नरक में कौन-से सुखी हैं इजा? गोमती कहना चाहती थी, पर कह न पायी।

दोपहर होते-होते यह खबर सारे गांव में फैल गयी कि गोमती के लच्छन भले नहीं। भागकर माँ के पास आ गयी है। भली होती तो पति का घर क्यों छोड़ती? इसके तो बड़े-बड़े क़िस्से हैं। तभी ककिया ससुर ने पीटा है! पति को तो अपना ही सहूर नहीं। उससे ही कुछ डरती तो

यों खुली घूमती !

वहुतों ने यों एक कौवे के नौ कौवे वनाये तो सहानुभूति जतलानेवाली भी कम न थीं, गाँव में !

"पैदा हो खोटे करम ले के हुई थी वेचारी !" कुछ औरतों ने कहा, "दो-तीन ही साल की थी कि वाप गुजर गया। वारह-तेरह की कच्ची उमर में विधवा हो गयी। दूसरा विवाह किया तो ये हाल। किसी दिन फाँसी लगाकर आतमघात कर लेगी—हमारी वचली की तरह।"

एक ही दिन में गोमती-गाथा दूर-दूर तक फैल गयी। वूढ़ी माँ यह सव कुछ सुनकर घवरा उठी, "हूँ गोमि, चल ! तुझे पहुँचा आऊँ ! मरे-वचे, जैसा तेरे काने करम में हो चल...!"

कुन्नू के लिए दो दाने काँठी अखरोट और दाड़िम के वाँधकर गोमती माँ के साथ दूसरे ही दिन फिर चल पड़ी।

रास्ते-भर सोचती रही—कहीं कोई ठीक-सा घर होता तो इस कानी माँ को भी वुला लेती। मरते समय हम सव सामने होते। माँ को भी सन्तोष होता ! पर वहाँ तो अपना ही रहना सम्भव नहीं...। जव तक माँ है, मैके के दरवाजे खुले हैं, एक आसरा है। जिस दिन यह मरी वह रास्ता भी वन्द !

गोमती का उदास चेहरा देखकर, माँ का मन और छोटा हो आया। उसे समझाती हुई वोली, "पिरमा को किसी डँगरिया को दिखाकर झाड़-फूँक करवा। पहले की तरह वह ठीक हो गया तो तेरी अवेला दूर हो जायेगी। अवकी वार मैं खुद उसे समझाऊँगी। तेरे ककिया सास-ससुर को भी खूव खरी-खोटी सुनाऊँगी। दूसरे की औलाद पर यों हाथ उठाते हैं ! कोढ़ होगा कोढ़ ! हम गरीव हैं तो क्या हुआ ? हमारी औलाद पाथर-मिट्टी की है ?

तीन—

सांझ का सूरज मल्ली रौ के डाँडे के उस पार कहीं डूब रहा था। हलका-हलका कुहरा-सा छाया हुआ था। सामने के बर्फ़ीले पहाड़ कुछ-कुछ पीले लग रहे थे, हल्दी के रंग के—ढलते सूरज के कारण। देवदार के वनों में अभी से ठण्डा घना अँधेरा व्याप रहा था। जोस्यूड़ा की नदी पार कर जब गोमती अपने गाँव लधौंन पहुँची तो वहाँ अजब का आतंक छाया हुआ था।

जितने मुँह, उतनी बातें!

कलिय'का रन पर चढ़े थे। गालियाँ दे रहे थे। कह रहे थे—"ऐसी औलाद के पैदा होने से क्या?"

"मैं तो कहती थी, यह अतरिया—भँगड़िया एक दिन नाम डुबाकर रहेगा। सारा गाँव इस कलंकी के कारण बदनाम हो गया।" कलिय'का की कोयले से भी काली पत्नी मुद्गर-जैसे मोटे हाथ नचा-नचाकर कह रही थी, "पटवारी भी खूब हैं। पहले हमारे तेजुवा को पकड़कर ले जा रहे थे! सरपंच बीच में नहीं पड़ता तो उसे ही हौलात में डाल देते....।"

अपने घर के आँगन तक गोमती पहुँची ही थी कि भीड़ से निकलकर कुन्नू उसकी ओर दौड़ा। पाँवों पर पिल्ले की तरह लिपटता हुआ बोला, "इजा, सबने मारा मेरे बाज्यू को! उनके हाथों पर लोहे की साँकल बाँधकर ले गये....!"

"क्यों पकड़कर ले गये तेरे पिता को? क्यों?" गोमती का मुँह खुला का खुला रह गया।

अभी वह अधीर होकर हरलि से पूछ ही रही थी कि उसके पिता खिमु'का दनकते हुए आ धमके। अपनी छोटी-सी काली अँगुली बार-बार

हवा में हिलाते हुए गरजे, "सत्यानास होगा इस कलिया का! चोरी किसने की, और सजा कोई भुगते? अपने बेटे तेजुवा के बदले इस सुँगर की औलाद ने बेचारे पिरमा को हौलात भिजवा दिया।"

पिरमा के आँगन पर अब भीड़ इकट्ठी हो रही थी। एक-एक कर सब जुट रहे थे—औरत-मरद, बच्चे-बूढ़े! इतने में अपने घर से दनकता-फनकता हुआ तेजराम आया और खिमु'का की चिड़िया की-सी पतली गरदन मरोड़ता हुआ दूर ले गया, "तू देख रहा था मुझे चोरी करते हुए? जारजात, बता, हमने किसे भिजवाया हौलात? पिरमुआ ने चोरी की तो क्या सजा हम भुगतेंगे? बहका रहा है गाँव-गिराम वालों को!"

खिमु'का नाटे क़द के थे—तिनके-से दुबले-पतले! प्रतिरोध के बावजूद भी घिसटते चले गये। इतने में हल्ला सुनकर कलिय'का भी आ पहुँचे। हाथ में हुक़्क़े की नली थी—निगाले की, उसी से ही सिर पर पटा-पट मारने लगे।

"जिनावर की औलाद! पुरानी दुसमनी निकाल रहा है आज! इनसाफ पटवारी ज्यू करेंगे या तू मूरख?"

दोनों बाप-बेटों द्वारा यों पीटे जाने के बावजूद खिमु'का चुप न रहे। बित्ते-भर की फटी धोती झाड़ते हुए बोले, "देखता हूँ, उस गरीब को कब तक जाल में फँसाते हो? लोघाट, अल्मोड़ा की कचैरी में मैं जाऊँगा गवाही देने! सब सच-सच न बतला दिया तो मैं भी अपने बाप हरपतिया का बेटा नहीं!"

"जा-जा! ऐस्से बीत देखे हैं कचैरी जानेवाले! साले ने पिछले साल भाभर में गंगा थारु की पूँछ कटी गाय चुरायी थी....और खटीमा में लालू हलवाई के पास बेच दी थी।"

खिमु'का ने आसमान की ओर हाथ जोड़ते हुए कहा, "ब्याँनधूरा की कसम खाकर कहता हूँ अगर मैंने गाय चुरायी हो तो! हाँ, तेरी बहू ने तो नाक ही कटा दी थी—उस चुल कट्टे के साथ....। सारे थड़बान के इलाके में बदनामी हुई थी।"

अपनी पत्नी पर लगाये इस लांछन से तेजराम बुरी तरह तिलमिला उठा। चील की तरह खिमु'का पर फिर झपटने ही वाला था कि लोग बीच में कूद पड़े।

खिमु'का, इतने सयाने होकर यह क्या कर रहे हो ?" किसी ने उनका हाथ खींचा और घर के भीतर ले जाकर बन्द कर दिया।

भीड़ अब छँटने लगी थी। लोग झपाझप अपने-अपने घरों में छिपने लगे थे। डर था कि पटवारी कहीं फिर न आ धमके!

कहीं भी आज धौंकनी न चल रही थी। लोहे के अंगारे कहीं भी धधक नहीं रहे थे और न गरम लोहे पर ठण्डे हथौड़े की धनाधन आवाज़ ही! सारे आफर ठण्डे पड़े थे। शिल्पकारों-लोहारों का सारा गाँव श्मशान-सा लग रहा था—भूतहा। बत्ती भी जली कहीं दीखती न थी।

बूढ़ी माँ थकी हुई थी बहुत। अतः आँगन पर ही कपाल थामकर बैठ गयी। गोमती के जैसे हाथ-पांव ही टूट गये थे। वह मिट्टी पर ही बैठी की बैठी रह गयी। उसकी गोदी में कुन्नु सिसकता रहा।

जब अँधेरा कुछ और घना हो आया और बूँदाबाँदी के आसार झलकने लगे तो गोमती किसी तरह उठी और माँ का हाथ थामकर भीतर ले चली। पयाल के बिछौने पर दरी का फटा चीथड़ा डालकर उसे सुला दिया।

टूटे कनस्तर में आज एक भी दाना चावल न था। मँडुवे के काले आटे की एक पोटली रख गयी थी, वह ज्यों की त्यों धरी थी। तो पिरमा ने क्या एक बार भी चूल्हा न जलाया?

इतनी हिम्मत उसे अपने में न लगी कि उठकर आग जलाये और रोटियाँ सेंके!

घास का झीना बिछाकर वह भी लुढ़क पड़ी। कुन्नू अँधियारे में माँ से लिपटा अभी तक भी बीच-बीच में सिसक पड़ता था।

"कुना, तुझे भूख लगी है ?"

उसने अस्वीकृति में यों ही सिर हिला दिया।

"इजा !" अन्धकार में उसे जैसे सहसा कुछ याद आ पड़ा, "बाज्यू को उन्होंने डण्डे ही डण्डे खूब पीटा। फिर पटवारी दूर तक उन्हें मट्टी-पाथर में घसीटकर ले गया। उनकी पीठ छिलकर लहूलुहान हो गयी थी। सबके सामने कागत पर उनसे लिखवाया इजा....!"

"सो जा ! सो जा मुसु !" गोमती आँसू पोंछती हुई उसे थपकी देने लगी, "कल खाना नहीं बनाया उन्होंने ?"

"न्ना।"

"आज भी नहीं—"

"न्ना !"

"तो तूने क्या खाया ?"

"हरलि'दी ने एक तुमड़िया कंकड़ी दी थी !"

"बस्स, दो दिन से उसी पर है रे....!"

अँधियारे में गोमती ने उसका नन्हा-सा मुँह मसारा तो आँखों के पास गीला-गीला पानी-सा अनुभव कर चौंक पड़ी, "अरे, तू रो रहा है कुन्नू ?"

□

जंगल में लीसे के भरे हुए कनस्तरों की चोरी का मामला था। बरेली भेजने के लिए, सड़क के किनारे भरे हुए पीपों का ढेर लगा था। स्थानीय लोगों के किसी प्राइवेट ट्रकवाले के हाथ बीस-पचीस कनस्तर चोरी से बेच दिये जाने की अफ़वाह थी।

लधौन के पास ही यह सारा काण्ड हुआ था, इसलिए इसी गाँव के लोगों पर सबसे पहले सन्देह हुआ था।

पिरमा को पहले भी तीन-चार बार इसी तरह पकड़कर ले गये थे। मार-पीट के भय से जो भी इल्जाम उसपर लगाये जाते, उन्हें वह सहज ही स्वीकार कर लेता था। थोड़ी-बहुत सजा भुगतकर फिर अपने गाँव लौट आता था।

जब भी इलाक़े में कहीं चोरी होती, मार-पीट होती, किसी का घोड़ा खो जाता या गाय-बकरी ग़ायब हो जाती—सारी खोज-बीन के बाद अन्त में पिरमा को पटवारी के सामने खड़ा कर दिया जाता। जंगल में छिपकर कच्ची शराब बनानेवाले अकसर उसे अपने साथ ले जाते। गाँजा पिलाते। खाना खिलाते। ताकि कभी पुलिस का छापा पड़े तो उसे ही आगे किया जा सके!

उसके साथ ऐसा ज़ुल्म क्यों किया जाता है—कभी किसी ने इसका प्रतिरोध नहीं किया। पर इस बार खिमु'का के एकाएक यों बिफर पड़ने से सब सकते में आ गये थे। लोग भलीभाँति जानते थे कि यह बित्ते-भर का बौना अगर बिगड़ पड़ा तो कुछ का कुछ कर डालेगा। अतः सुबह-सुबह कलिय'का दो-तीन दाने-सयानों को साथ लेकर उनकी देहरी पर खड़े हो गये। स्वयं पीछे रहकर कलिय'का ने उन्हें आगे कर दिया था।

"खीमराम, कलराम से कल जो भूल हुई, उसका हमें दुख है यार।" प्रेमराम गुरु-गम्भीर वाणी में बोले, "इसकी तरफ से हम माँफी माँग लेते हैं! कहीं लोघाट-चम्पावत की अदालत में तुमने यह बात कह दी तो पटवारी-पुलिस फिर यहाँ आ धमकेगी, और पूरे गाँव की फजीहत होगी। जब पिरमा खुद अपने को कसूरवार मान रहा है तो तुम बीच में अपनी अड़ंगी क्यों लगाते हो? साला क्या फरक पड़ेगा कि हौलात में पिरमा गया या तेजुवा? आखिर हैं तो भाई ही। कका-ताऊ के हुए तो क्या हुआ? पिरमा यहाँ भी तो कुछ करता-धरता नहीं था। कुछ दिन जेल में ही बैठ आयेगा! तेजुवा माल-भाभरवाला ठहरा। इसी तेरह गते तो गाय-डंगरों की खोज-खबर लेने भाभर जा रहा है। उसके पेट पर लात क्यों मारते हो यार? उसने तुमारा क्या बिगाड़ा है?"

नाटे-से खिमु'का सहसा तनककर बोले, "यह तो तुम भी जानते हो कि चोरी में तेजुवा का ही हाथ था?"

"अरे, तू भी हद्द कर रहा है! बच्चा है यार! गलत लोगों की सोबत में पड़ गया होगा...!" इस बार कलिय'का बोले तो हरराम ने

झिड़क दिया, "तुम चोप करो हो कलराम !'

खिमु'का कलिय'का की ओर मुड़कर मुँह चिढ़ाते हुए बोले, "अरे-ए, बैच्चा ए-ए—शरम नहीं आती कलराम तुम्हें ! टीका-चन्दन लगाते हो ! गले में छह पलड़िया पहनते हो और अँधेरे में इक्की-दुक्की औरतों की झोपड़ियों की फड़कियाँ खोलते हो रात में !"

खिमु'का की छोटी-छोटी आँखों से चिनगारियाँ-सी फूटने लगीं। चुनौती की मुद्रा में, सदा की तरह हवा में अँगुली लहराते हुए आवेश में बोले, "तुमने ही पिरमा के सिर में ढुंग-पाथर मारा था, तब से उसकी यह दशा हुई। तुम हत्यारे हो हत्यारे ! तुमको बरम-हत्या का पाप लगेगा कलराम ! पता नहीं तुमने कितनों को मारा है ?'

खिमु'का की आँखें माथे पर चढ़ आयीं। उनके कन्धों को सहलाते हुए हरराम बोले, "इस बार चोप कर जाओ हो खीमराम ! तुम्हें गंगा माई की कसम जो अब जबान खोली तो !" उन्होंने अपनी फटी टोपी खिमु'का के पाँवों पर धर दी, "इन सफेद बालों का कुछ तो लिहाज कर दे यार ! पिरमा को कौन-सी उमर-कैद हो रही है ? दो-चार दिन घूम-घामकर लौट आयेगा। बेकार में झगड़ा-फसाद बढ़ाना ठीक है ? कलराम को हम देख लेंगे !"

खिमु'का अब कुछ भी कह सकने की स्थिति में न थे। लोहे के बरतन-भाँडे बोरे में भरकर उन्होंने पहले से ही तैयार कर रखे थे। इन्हें बेचने के लिए चालसी-तल्ली रौ की तरफ़ जानेवाले थे, ताकि जाड़ों के लिए अनाज की व्यवस्था हो सके।

अतः अपने सफ़ेद बालों पर हाथ फेरते हुए खून का घूँट पीकर रह गये।

चार—

रात-भर बारिश होती रही। बादल कड़कते। बिजली चमकती। झोंपड़ी में तमाम पानी ही पानी भर गया था। तीनों जनें उकड़ू मारे कभी इस किनारे बैठते, कभी उस।

सुबह बरसात कुछ थमी तो गोमती ने बरतन से उलीच-उलीचकर पानी बाहर फेंका।

कुन्नू भूख से कुलबुला रहा था। बुढ़िया मां अपने गांव लौटना नहीं चाहती थी, "गोमु, तुझे छोड़कर कैसे जाऊं इजु? बिरमा को हांककर ले गये, तुझे भी ले जायेंगे तो फिर मैं क्या करूंगी?" मां के द्रवित-स्वर में विचित्र-सी वेदना थी।

"नहीं, नहीं इजा, तू जा। यहां जो कुछ भी होगा मैं देख लूंगी। तू यहां रहेगी तो मेरी परेशानी और बढ़ जायेगी। ये राकस मुझे मारेंगे-पीटेंगे, तू देख नहीं सकेगी। तुझे दुख होगा। इसलिए तू चली जा।"

मिट्टी का फ़र्श गीला था। लकड़ियां गीली थीं। चूल्हे की जगह गंदले पानी की छोटी-सी तलैया भर रही थी।

आग कैसे जलायें? किस तरह मां को कुछ खिलाये—गोमती को सूझ न पा रहा था। आटा कुछ था, मंडुवे का, पर उसे सेंकने की समस्या थी। मां इन सरगु के जैसे काले चकोटों को बिना दांतों के कैसे चबा पायेगी? अतः कुछ सोचकर उसने एक पीला कद्दू काटा। छोटे-छोटे चौकोर टुकड़े बनाये, पीतल की पतीली में भरे और खिमुका के घर की ओर चल पड़ी।

आंच पर पतीली अभी रखी ही थी कि कुन्नू दौड़ता हुआ आया, "इजा, कोई आये हैं! जल्दी चल घर!"

गोमती झटपट घर की ओर भागी ।

"तुमको अभी पटवारी ज्यू बुला रहे हैं....।" आगन्तुकों में से एक ने कहा ।

"क्यों बुला रहे हैं ?"

"चोरी के मामले में कुछ पूछ-ताछ का चक्कर होगा !" पटवारी के सहायक सटवारी ने तनिक रोब जमाते हुए कहा ।

"क्या पूछ-ताछ—" गोमती कुछ पूछे, उससे पहले ही माँ बोल पड़ी ।

"यह तो उन्हीं से जाकर पूछो ना ! कानून-कचैरी की कोई बात होगी । हमें क्या पता ?"

गोमती कुछ सोचती हुई बोली, "कहाँ बुला रहे हैं लाटी ?"

"अपने डेरे में ।"

"पिरमा को भी वहीं बन्द कर रखा है क्या ?" बूढ़ी माँ ने पूछा ।

"हाँ, उसने तो कबूल कर भी लिया है....।"

"क्या—?"

"कि लीसे के कण्टर चुराने में उसका भी हाथ था ।"

"तो फिर अब हमें बुलाकर क्या होगा ?" हताश स्वर में गोमती ने कहा ।

"तुम्हारे बयान ठीक निकले तो कौन जाने छोड़ दें !"

"छोड़कर भी क्या होगा ? जब मन होगा, फिर बाँधकर ले जायेंगे । मुझे पता है कि पटवारी ज्यू उसे ही पकड़कर क्यों ले जाते हैं ? क्यों मुझे बुला रहे हैं ?"

इतने में मल्ले घर से वृद्ध हरराम अपनी फटी हुई ऊनी टोपी ठीक करते हुए आ पहुँचे, "ठीक ही तो कहते हैं सटवारी ज्यू । तू जाकर देख ले बहू ! सरकार-दरबार में न्या होगा....।'

"हुँ," व्यंग्य से देखा गोमती ने, "न्या ही दुनिया में होता तो आज हमारी यह कुगत होती ? हमारे लिए कुछ भी नहीं....। मैं तो अब गजार-देवता के थान में जाऊँगी । वहीं दो दाने अच्छत फेंककर घात डालूँगी ।

दोनों हाथ जोड़कर कहूँगी—जो अन्या करे, उसका नास कर नास—जड़जड़न्ती सत्यानास !"

वे लोग कुछ क्षण खड़े रहकर चले गये तो माँ ने गोमती को समझाया, "तू तो वेकार में जिद पकड़ लेती है इजु ! जा आती तो क्या तुझे खा जाते ? अभी जब तू कद्दू उबालने गयी थी, सुदलि कह रही थी कि पिरमा को उन्होंने इतना मारा कि खून की उल्टी कर रहा था। क्या पता उसके परानों को कुछ हो न गया हो....।"

'इजा, तू जा ! जो हमारी करनी में है, उसे कौन उलट सकता है ? हमारे भाग में इस तरह मरना लिखा है तो मर जायेंगे, वस्स !" गोमती रुँआँसी होकर बोली, "तू अपने परान क्यों सुखाती है इजा....?'

लपककर गोमती खिमु'का के घर गयी। उबलती हुई पतीली दोनों हाथों से यों ही उठाकर ले आयी।

"इजा, तुझे भूख लगी होगी। ठण्डे करके खा ले !" गरम पतीली उसने माँ के सामने रख दी। पतीली में ढक्कन के नीचे कद्दू की ही हरी पत्तियाँ रखी थीं। ढकने के किनारों से गरम भाप की कई लकीरें फूट रही थीं।

माँ से कुछ भी खाया न गया। गरम टुकड़ा हाथ में थामे फूँऊँ-फूँऊँ फूँक मारकर ठण्डा करने की असफल चेष्टा कर रही थी। पास ही बैठा कुन्नू चपाचप दो-तीन टुकड़े एक साथ निगल गया। गोमती वर्षा में भीगे फटे चीथड़ों को बाहर घाम में सुखाने लगी। दरी का टुकड़ा भी उसने लकड़ी के खम्भे के ऊपर फैला दिया।

"इजा, तू तो कुछ भी नहीं खा रही ?" भीतर आते ही गोमती ने पूछा।

"मेरी भूख ही हिरा गयी गोमु ! पिरमा को कुछ हो-हवा पड़ा तो तू क्या करेगी ? अपना कपाल कैसे तोड़ेगी ?" माँ का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। हाथ का टुकड़ा हाथ में ही धरा रह गया।

इसी तरह दोनों देर तक बैठी रहीं—। वक्त होने लगा तो गोमती ने

कहा, "अब तू चल इजा ! नहीं तो शाम तक न पहुँच पायेगी। एक तो कानी, उसपर नदी का ऊबड़-खाबड़ रौखड़वाला रास्ता। बरखा का पानी कमर-कमर से भी ऊपर पहुँच गया होगा। जतन से पार करना है, कहीं बह पड़ेगी....।"

"ऐसे धन्न भाग, कहाँ इजु !" माँ ने एक ठण्डी साँस ली।



माँ को दूर तक छोड़ तो आयी गोमती, पर मन बहुत परेशान था। कपाल थामे कुछ देर घाम में बैठी रही—सूखी लकड़ियों की ढेरी की आड़ में। हवा कुछ कम लग रही थी यहाँ। कल सारी रात बरखा के कारण सो न पायी थी, इसलिए झपकी-सी आ रही थी। कभी सोचा करती थी कि अब के छप्पर पर नये पयाल के कुछ पूले डालकर भीतर की तरफ़ से लीप लेगी। बरखा-पानी और बरफ़ से छुटकारा मिल जायेगा। पर सारी योजना धरी की धरी रह गयी अब ! जितना पयाल उसने तिनके-तिनके कर समेटा था, उसकी अनुपस्थिति में ककिया ससुर ने अपने बैलों के आगे डाल दिया था....।

भीगी घाघरी का फटा चाल धूप में सुखाने के लिए फैला दिया। नंगी टाँगों को छिपाने के लिए अब क्या करे? पल-भर सोचने के बाद उसने सिर की पिछौड़ी उचेड़ी और टाँगों के ऊपर फैला दी। सुडौल, संगमरमर-सी जंघाओं पर सर्दी के कारण काँटे-से उभर आये थे। अपनी खुरदरी हथेली से सहला-सहलाकर वह गरम करने लगी उन्हें। इन जाड़ों में तन ढकने के लिए कुछ भी न था। घाघरी जगह-जगह से फटकर जाल-सी हो गयी थी। पिछौड़ी सिर ढकने के लिए भी पर्याप्त न थी। छाती पर लिपटी आँगड़ी फटकर जीर्ण हो गयी थी, उरोजों की जगह बाहर से गोलाई में एकदम फट गयी थी। केवल झीना काला अस्तर ही शेष रह गया था।

उस दिन रमियाँ के खेत में कटाई कर रही थी। रमियाँ उससे निचले

खेत में कूदकर उसकी ओर व्यर्थ की बातें करता हुआ, बीच-बीच में किन
निगाहों से उझककर देख रहा था! कपड़ों को बार-बार खींचतान कर
अपने अंग ढकने का असफल प्रयास करती-करती थक गयी तो हँसिया खेत
पर ही छोड़कर पानी पीने के बहाने ऊपर चली गयी थी—आँगन में।
बाद में फिर रमियाँ की पत्नी के साथ लौटकर खेत में रात तक काम
करती रही थी....।

जब बांज के पत्ते काटने पेड़ पर चढ़ती है तो लकड़बग्घे की-सी सूरत-
वाला पतरौल तने से सटकर खड़ा हो जाता है और ऊपर झाँकने लगता
है। एक-दो बार गोमती ने गुस्से से ऊपर से थूका तो खिः-खिः हँसने
लगा था—बेशरम!

धूप में बैठे अभी कुछ ही क्षण बीते थे कि हाथ में हरे घास की आँठी
उठाये कलिय'का नीचे खेत से आ धमके। कुछ देर पास ठिठककर गोमती
को सिर से पाँवों तक आँखों ही आँखों निगलने-से लगे।

गोमती को सूझ न रहा था कि किस तरह अपना उघड़ा तन छिपाये!

"पिरमा अभी तो छूटकर नहीं आया न?"

"न्ना" के साथ ही गोमती ने अपने पाँव बिना ऊपर उठाये ही दायीं
ओर घुमाये और दोनों बाँहों से, बाहर की ओर झाँकते उरोज छिपाकर
पीठ फेर ली!

कुछ घड़ी साँस खींचे आँखें मींचे इसी तरह बैठी रही वह।

जब उसे अच्छी तरह अहसास हो गया कि कलिय'का चले गये, तब
जल्दी से उठकर भीतर भाग गयी।

आज कुछ न कुछ विचपात यह बन-मानुस अवश्य करेगा....माँ को न
जाने देती तो अच्छा रहता!

फगार की आ

पधानी ने अपने खेत में काम करने के लिए उसे बुलाया। शाम को मँडुवे की दो रोटियाँ मिल जायेंगी—यह सोचकर वह चली तो गयी, पर मन न लगा, तरह-तरह की आशंकाएँ उठती जा रही थीं। इस पूरे गाँव में केवल खिमु'का ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिनसे तनिक सहानुभूति की आशा की जा सकती थी। अभी-अभी पधानी ने बतलाया कि वह भी नये बरतन बेचने के लिए तल्ली-रौ की तरफ़ चले गये हैं।

काम करते-करते उसके हाथ रुक गये। उसे सहसा एक विचार आया और वह उठ खड़ी हुई।

"हूँ पधानि सासू, बाकी का काम कल कर दूँगी हो!" उसने कहा, "अभी तबीयत ठीक नहीं। सिर में रिंगाई आ रही—चक्कर-जैसा....।"

"भूख से तो चक्कर नहीं आ रहे?" पधानी ने पूछा।

"नहीं, नहीं सासु ज्यू वैसे ही घूम रहा होगा सिर....।" गोमती हँसिया कमर में खोंसकर घर की ओर चल पड़ी।

कल से कुछ भी खाया न था, इसलिए चढ़ाई पर चढ़ते हुए पाँव काँप-से रहे थे। रास्ते में खीरे की बेल से एक खीरा उसने चुपके-से तोड़ा और घाघरी के 'फेंट' में छिपा लिया।

घर के आँगन पर पहुँचते ही देखा—कुन्नू उसकी पुरानी घाघरी का टुकड़ा धूप में बिछाये लेटा हुआ है।

"जर-बुखार तो नहीं?" थोड़े-से चलने मात्र से गोमती हाँफ रही थी।

कुन्नू वैसे ही लेटा रहा—बड़ी-बड़ी सूनी आँखों से माँ की ओर देखता हुआ।

गोमती ने पास जाकर उसका माथा मसारा। सचमुच शरीर तप

रहा था।

माँ ने खीरा दिखलाया तो उस ओर भी वह झपटा नहीं। चुपचाप तटस्थ-भाव से देखता रहा।

भीतर जाकर गोमती कुछ टटोलने लगी। बहुत देर तक टटोलने के पश्चात् भी वह न मिला तो झुँझलाई हुई बाहर आयी, "कुनुवाँ, हमारी लोहे की कटोरी कहाँ है ?"

कुन्नू झटपट उठा और काठ के टूटे बक्से के नीचे से निकालकर ले आया। उसमें खुबानी की गुठलियाँ भरी थीं, जुट्टी खेलने के लिए।

"क्या करेगी इजा ?" उसने पूछा।

गोमती ने कोई उत्तर न दिया। फटे कपड़े इस तरह से खींच-तानकर ठीक करने लगी कि उन्हें पहनकर बाहर निकला जा सके।

"तू चलेगा कुनियाँ ?" स्नेह से गोमती ने पूछा।

"कहाँ ?"

"पोखरी की दूकान तक।"

"वहाँ क्या है इजा ?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही—।"

"गट्टा-मिसरी खिलायेगी....?" कुन्नू ने पूछा तो गोमती ने बड़े विवश-भाव से देखा, "गट्टा-मिसरी ही तेरे भाग में होते तो इस दरिद्दर घर में क्यों जनमता ?"

उसका हाथ थामे वह चली गयी। साँझ हो रही थी। आते-आते रात हो जायेगी। अकेली जाना ठीक न लग रहा था। किसका क्या ईमान ?

"थोकदार ज्यू, एक चिट्ठी लिख दो हो मेरे देवर देवराम को ! लाम पर हैं।" बगल में दबायी हुई लोहे की कटोरी उसने सामने बढ़ा दी, "इसे बेच देना। एक चिट्ठी का पैसा तो निकल ही आयेगा न...!"

बूढ़े किसनसिंह थोकदार जानते थे कि ये गरीब कलिया के डसे हुए हैं। कल पिरमा को ले जाते हुए उन्होंने देखा था। उन्हीं की दुकान पर बैठकर पटवारीजी समेत सबने 'चा' पी थी। तमाखू खाया था। सर्दी से

बेचारा थुर-थुर काँप रहा था।

"क्या लिखाना चाहती है ?" उन्होंने सहानुभूति से पूछा।

"यही...घर की कुसल-बात !"

लिखने के लिए जैसे ही कागज़ उन्होंने निकाला, पूछा, "हाँ, उसका पता-पाती कहीं लिखा है ?"

आँगड़ी में से कुछ फटे-पुराने पीले कागज-पत्तर उसने निकाले और उनके सामने बिखेर दिये।

थोकदार अधिक पढ़े-लिखे नहीं, फिर भी किसी तरह काम चला लेते हैं। खेतीखान की प्राइमरी-पाठशाला से अब से लगभग चालीस-पैंतालीस साल पहले उन्होंने दफा दो पास किया था।

लम्बा-सा कोरा कागज़ निकालकर वह चुपचाप लिखने बैठे। 'स्वस्ती सिरी' की प्रारम्भिक कुछ बातें लिखने के पश्चात् अपना भारी सिर उन्होंने ऊपर उठाया, 'हूँ, बता ! हौर क्या लिखूँ ?"

"यही सब कुशल-बात—!"

"कुसल-बात" भी पूरी हो गयी तो उन्होंने मोटे चश्मे से फिर सामने देखा, "हौर क्या !"

'सब लिख दो', गोमती बोली, "तुमने माघ-फागुन से कोई चिट्ठी-पतरी नहीं दी। हरेला के मेले के दिनों भी एक चिट्ठी गहतोड़ी बामन से लिखाकर भिजवायी थी। पता करना कि वह मिली या नहीं !....कल तुमारे ठुल'दा को ये लोग फिर पकड़कर झेल में डालने के लिए ले गये हैं। तुमारे कका की ही करतूत लगती है। कल खिमु'का ने कुछ कहा तो उनको भी बाप-बेटे ने खूब मारा। तुमारे कका हमें भी मारते-धमकाते रहते हैं। तुम वहाँ सरकार से पटवारी को लिखवा दो कि तुमारे ठुल'दा निरे गऊ हैं। उन्होंने चोरी नहीं की....। बिना बात ये लोग लाठी उचाकर मारने को आ रहे हैं। किसी दिन हमें जरूर मार डालेंगे। तुम एक बार आकर हमारा मुख देख जाओ....!"

गोमती का गला भर आया। इससे अधिक वह कुछ न कह पायी।

थोकदार चुपचाप चिट्ठी लिखते रहे। अन्त में जीभ से थूक लगाकर चिट्ठी चिपकाते हुए बोले, "ले, ल्वारी, उस लाल बम्बे में डाल आ इसे!"

सामने चीड़ के पेड़ पर लटकते लाल बम्बे में चिट्ठी डाल आयी गोमती।

लालटेन की फूटी हुई काली चिमनी से धुँधला प्रकाश बिखर रहा था। अधिक दूर तक वृद्ध थोकदार को दीखता न था। सामने की ओर इशारा कर पूछा, "लोहारनी, ओ कौन है?"

"आपके लोहार का लड़का है थोकदार ज्यू!"

कुछ टटोलती हुई निगाहों से थोकदार उसकी ओर देखते रहे, "तेरा नाम क्या है यार?"

बच्चा शरमा गया। फटे कोट के पल्ले में गरदन छिपाता हुआ और भी सिकुड़कर छोटा हो गया।

"बता इजु, थोकदार'बू तेरा नाम पूछ रहे हैं?"

सहमते-सहमते वह बोला, "कुनु—वाँ!"

"नाम तो बड़ा जोरदार है यार! अच्छा बता अब तू खायेगा क्या?"

बच्चे ने अपनी भूखी निगाहों से चारों ओर देखा और फिर धीरे-से कहा, "कुछ भी नहीं....!"

थैली में से कुछ दाने मूँगफली के निकालकर उसकी ओर बढ़ाते हुए बोले, "ले, खा भी! तू तो यों ही सरमा रहा है। हमारे हिस्से का लोहार तो तू ही है यार। कलिया तो सोबन के हिस्से में गया है!"

तनिक रुककर वह फिर बोले, जैसे सहसा कुछ याद आ पड़ा हो, "अच्छा बता, कलिया तुझे भी मारता है क्या?"

बच्चे ने 'हाँ' कर सिर हिला दिया और बन्दर की तरह उकड़ूँ-कू बैठकर पटर-पटर मूँगफली चबाने लगा, छिलके समेत।

"तुझे तो जर-बुखार है! तू मूँगफली खा रहा है? खाँसी आयेगी," माँ ने पूछा तो कुन्नू ने कोई उत्तर न दिया।

☐

अँधियारे में घर के कोने में पड़ी गठरी देखकर वह चौंकी "हैं, यह क्या ?" अचरज से बोली।

"मैं—हूँ—गोमु !" हलकी-सी आवाज़ आयी।

"इजा तू ! तू तो चली गयी थी ?"

उसी जगह पर कराहती हुई उठ बैठी गठरी, "पिपलाटी गाँव तक गयी तो पाँव आगे न बढ़े। वहाँ के लोगों ने भी टोका कि कितनी निठोर है तू ! दुख में पड़ी लड़की को छोड़कर अपने घर जा रही है ! वहाँ क्या धरा है तेरा ? मरते समय गले में कोई पानी गेरनेवाला तक नहीं !"

गोमती पास ही बैठ गयी।

"पिपलाटी का खिलानन्द कह रहा था कि पिरमा की हालत भौत खराब है। अभी लोहाघाट की हौलात में नहीं भेजा, पटवारी ज्यू के डेरे में ही बन्द है। वह अपनी आँखों से देख आया है।" माँ ने अपने दुखते पाँवों को सहलाते हुए कहा।

"तू एक बार हो आती तो शायद वह छूट जाता इजु ! अपने बयान दे क्यों नहीं आती ? पटवारी ज्यू भी बुला रहे थे। सच-सच कह देना कि तुमने चोरी नहीं की !"

चुपचाप सुनती रही गोमती।

रात-भर तरह-तरह की आशंकाएँ मन में उठती रहीं। दूसरे दिन भी काम में जी लगा नहीं। पति का निरीह चेहरा रह-रहकर आँखों के आगे घूमता रहा।

शाम को खिमु'का के बेटे को बुलाकर बोली, "हैं हो देवर ज्यू, मुझे पटवारी के डेरे तक नहीं छोड़ आते ? सुना है—मुझे बुला रहे हैं, पूछताछ के वास्ते !"

"क्यों नहीं ? चलो, अभी चलो ! पिरम'दा की हालत नाजुक बता रहे हैं।" करमराम ने कहा।

"इजा, मैं जा रही हूँ। रात तक आ जाऊँगी। कुन्नू को खिलाकर सुला देना। कल से उसे बुखार है....।" इतना कहकर गोमती झटपट

करमराम के साथ चल पड़ी।

बुढ़िया मां ने कुछ दाने चावल के उबाले, पर कुन्नू ने चखे तक नहीं। एक कटोरी मांड़ में नमक मिलाकर उसने पी ली और चावल गोमती के लिए रख दिये। कुन्नू भी सुबह उठते ही खाने को कुछ मांगने लगेगा!

टूटे दरवाजे से बाहर तारों की ओर ताकती हुई सोचने लगी—गोमती अब पहुँच गयी होगी! लौटते-लौटते पता नहीं कितनी देर हो जावे! तीन त्योड़ी तब तक निकल आयेगी।

द्वार पर भीतर से अलगनी लगाकर अभी वह सोयी ही थी कि किसी ने टट्टर के दरवाजे खटखटाये। अँधियारे में हाथ से जमीन टटोलती हुई पहुँची तो देखा—करनियां खड़ा है!

"गोमु नहीं आयी—"

"पटवारी ज्यू कह रहे थे कि जांच-पड़ताल में अभी वखत लगेगा। तू जा! मैं अकेली आ जाऊँगी!"

फिर कोई प्रश्न मां ने न पूछा। धीरे से द्वार बन्द किये और बर्फ़-से ठण्डे बिछौने पर लुढ़क गयी।

दिन-भर चलने से थकी थी। पांव भी दुख रहे थे, पर नींद न आ पा रही थी। तरह-तरह के प्रश्न फन फैलाये खड़े हो रहे थे—डँसने के लिए।

—यह अभागी ऐसा रूप लेकर न जनमती तो शायद आज इतना दुख न पाती! उसने एक ठण्डी आह भरी।

उसे याद आये अपने अतीत के वे दिन, जब वह स्वयं सत्तरह-अठारह साल की थी!

ब्याह हुए आठ-नौ वर्ष बीत गये थे, पर अभी तक कोई सन्तान न थी। सांवली होने के बावजूद उसमें अद्भुत रूप था, अनोखी जवानी! जो देखता, देखता ही रह जाता! लोहार-शिल्पकारों में ऐसा कम ही होता था। एक बार वह ब्यानधूरा के मेले से लौटी थी कि घर में कुहराम मचा

दीखा। उसकी ननद ने खुबानी की डाल पर रस्सी बाँधकर आत्महत्या कर ली थी !

ससुराल में उसे दुख था। यहाँ मैकेवाले अपने घर टिकने नहीं देते थे। बेचारी विधवा थी। पेट में किसी का बच्चा रह गया था। लोक-लाज के भय से मुक्ति पाने के लिए यह रास्ता अपना लिया था।

बस, वह क्या मरी, सबके लिए आफ़त खड़ी हो गयी। पटवारी-पेशकार पूरे फ़ौज-फर्रा के साथ गाँव में आ धमके। दिनों तक पूछताछ के साथ-साथ मारपीट भी चलती रही।

पेशकार का कहना था कि लड़की के मैकेवालों ने ही ज़बरदस्ती उसे फाँसी पर लटकाया है। नहीं तो ख़ुद क्यों मरती ? दुनिया में दुख किसे नहीं ? क्या सब गले में फन्दा लगाकर ही लटकते हैं ? ज़रूर इनकी बदमाशी है। इन्होंने ही लड़की को जान-बूझकर मारा है !

उसके ससुर को, जेठ को, पति को—सबको बाँधकर जानवरों के बाड़े में बन्द कर दिया।

पेशकार को शराब की लत थी। उसके लिए रोज़ गाँववालों की तरफ़ से बकरियाँ कटतीं। भोजन का इन्तज़ाम होता। बरात की तरह लोग बैठकर जीमते। सारा खर्चा गाँव के सिर पर था।

जब कहीं, कोई सुराग़ न मिला तो एक दिन रात को पटवारी को डपटते हुए बोला, "मर्दों से ही नहीं, औरतों से भी पूछताछ करो। घर में कौन-कौन हैं ? सबको घसीटकर लाओ।"

सास, जेठानी सबको एक-एक कर बुलाया गया।

उनसे पूछताछ करने के पश्चात् अन्त में आयी उसकी बारी।

"इसका हाथ ज़रूर होगा, इस हत्या में !" [illegible] हुआ पेशकार गरजा और फिर अकेले बन्द कमरे में, रात को देर तक पूछताछ करता रहा।

भोजन के बाद रात को पूछताछ शुरू हुई—

"जब तुमने उस बेचारी को ज़बरदस्ती रस्सी बाँधकर लटकाया

होगा, उसने जरूर छीना-झपटी की होगी ! तुमसे हाथापाई भी हुई ही होगी ! मरता क्या-क्या न करता ? हो सकता है, उसने तुम्हें दांतों से, नाखूनों से काटा भी हो !"

"मुझे वह क्यों काटेगी ? मेरा उससे कोई झगड़ा न था....।" वह कह ही रही थी कि पेशकार दांत पीसता हुआ गुस्से से फट पड़ा, 'तेरा नहीं तो क्या उससे मेरा झगड़ा था ? कुतिया की बच्ची, तेरी सास तो खुद कह गयी है कि तुझसे उसकी बोल-चाल तक बन्द थी !"

"वह तो नयी पिछोड़ी के बारे में थी....!"

"तो क्या तुझसे हाथी-घोड़े के बारे में होगी ?" हाथ नचाकर वह बोला, "अब तो तू मना करेगी ही ! हरामजादी, कैसी गऊ बन रही है, इस समय ! तेरे बारे में गांववालों ने मुझे सब बता दिया है। तेरे तो गजब के क़िस्से हैं ! जिसे तूने खराब नहीं किया, वह मरद ही नहीं !" आवेश में वह हांफने-सा लगा।

उसकी हालत देखने लायक़ थी ! इस सर्दी में भी वह ठण्डा पानी पी रहा था।

कुछ रुककर वह फिर गरजा, "अच्छा, बता, उससे छीना-झपटी में तेरे शरीर पर कहां-कहां खरोंच लगी ? कहीं न कहीं दांतों के, नाखूनों के निशान अवश्य होंगे ! मेरे बाल धूप में तो सफ़ेद हुए नहीं ! बड़े-बड़े खूंख्वार डाकूओं को मैंने धूल चटा रखी है। तू तो चिड़िया है, निरी चिड़िया ! चुटकी में मसल दूं तो पता भी न चले तेरा !"

अवाक्-सी वह देखती रही, उसका मुंह ! यह क्या कह रहा है, उसकी समझ में न आ पा रहा था। डर-डरकर, रुक-रुककर वह बोली, "अपनी ननद को मैं क्यों मारूंगी....? क्यों करूंगी उससे छीना-झपटी ?... मेरा कोई क़सूर नहीं माई-बाप !" हाथ जोड़ती हुई वह रो पड़ी।

वह सोचती थी, इस तरह रोने से शायद वह छोड़ दे ! पर तभी एक तमाचा गाल पर जमाता हुआ पेशकार बोला, "उसे मारकर अब निर्दोष बन रही है—सुअर की बच्ची ! उतार कपड़े ! दिखा निशान

कहाँ-कहाँ पर हैं ? उसी को तरह तुझे भी फाँसी पर न लटकवाया तो मेरा नाम कुँवरसिंह पेशकार नहीं !"

भय से वह काँपने लगी। गाल ही नहीं सारा शरीर झनझना रहा था। आँखों के आगे तारे झिलमिलाते नज़र आ रहे थे।

"उतार कपड़े !"

यन्त्र की तरह उसने सिर पर ढकी पिछौड़ी हटाकर एक ओर रख दी....।

"आँगड़ी उतारने तेरा बाप आयेगा यहाँ ?"

उसने बिना तनिक प्रतिरोध के उसे भी परे रख दिया।

फिर जो-जो आदेश वह देता रहा, विवश-भाव से मानती रही वह।

हाथ में लालटेन उठाकर, अन्त में उसके शरीर पर निशान टटोलने लगा।

पर देर तक अंग-अंग टटोलने के पश्चात् भी जब कहीं कोई चिह्न न मिला तो उसके शरीर पर हाथ फेरता हुआ बोला, "ठीक ही कहते हैं, गाँव के लोग कि तू बड़ी हरीप है, घाघ ! उसे भी मार दिया और अपने शरीर पर एक खरौंच तक न लगने दी....! अच्छा बता, तूने उसके गले में फन्दा किस तरह डाला ?"

प्रत्युत्तर में उसकी बड़ी-बड़ी आँखें फिर डबडबा आयीं तो पेशकार ने सहानुभूति जतलाते हुए, अपने दोनों हाथों से उसकी नग्न देह उठाकर अपने बिस्तर पर रख दी—

"थक गयी होगी....! आराम कर। अगला सवाल सुबह पूछेंगे।" और लालटेन बुझा दी उसने....।

फिर जब तक पेशकार रहा, रोज उससे एकान्त में तरह-तरह से पूछ-ताछ करता रहा। अन्त में जाने के दिन अहसान जतलाता हुआ बोला, "तेरा लिहाज़ करके इन सबको फाँसी की सज़ा से बरी करवा दिया, नहीं तो इस कच्ची उमर में तू विधवा हो जाती !

इस मुसीबत से छूटने के पश्चात् भी, दिनों तक उसने कितना-कुछ

हीं सहा था....! पेशकार के जाने के बाद पटवारी ने पूछताछ का सिल-
सला जारी रखा। बाद में भी तरह-तरह के बहाने से गांव आता रहा....।

शुक्र तारा अब आसमान में स्पष्ट झलक रहा था। गोमती अब तक
लौटी न थी। बूढ़ी मां किवाड़ पर अपनी धुंधली निगाहें टिकाये, न जाने
क्या-क्या सोच रही थी!

प्रातः रुग्ण, विक्षिप्त पति का हाथ थामे गोमती घर आयी तो मां
उसके उतरे हुए चेहरे की ओर देखती रह गयी। एकदम पीली लग रही
थी वह। आकृति में अजब-सा अवसाद था।

भीतर कपड़े बदलते समय एक झलक में मां ने देखा—उसकी देह में
जगह-जगह नाखूनों के, दांतों के लाल-लाल निशान हैं, जिनसे अब भी लहू
टपक रहा है!

छह—

कुछ दिनों में पिरमा के स्वास्थ्य में कुछ सुधार दिखलाई देने लगा।
गोमती के घाव भी धीरे-धीरे भरने लगे। एक दिन शाम को दूसरों के खेत
पर काम करके थकी घर लौटी ही थी कि खिमु'का की लड़की हरलि
दौड़ती हुई आयी, "तुम यहां बैठी क्या कर रही हो ओ बोज्यू? हमारे
अखरोटवाले खेत के पास पिरम'दा को ये सब मिलकर पीट रहे हैं। [illegible]
बकरियां लेकर घर आ रही थी तो तेजुवा'दा कह रहा था, इस साले [illegible]
मारकर वहीं गधेरे में चेप जाते हैं...!"

इतना सुनना था कि गोमती बावली-सी खेतों ही खेतों भागी। [illegible]
पीछे कुन्नू भी। अँधियारा कुछ-कुछ घिर आया था। अभी-अभी [illegible]
बारिश हुई थी, इसलिए मटियाली पगडण्डी में काफ़ी कीचड़ था। [illegible]
पत्थर—सब पार कर गोमती पेड़ के पास पहुंची तो वहां शोरगु[illegible]
कगार [illegible]

था। गीली ज़मीन पर पिरमा कटे केंचुए की तरह तड़प रहा था। कलिय'का उसे बेरहमी से दनादन पीटते चले जा रहे थे, "कमीने, इसीलिए तुझे गाय-डँगरों को चराने भेजा था? आलू के सारे खेत चौपट करवा दिये! मैं आज तेरा खून पीकर रहूँगा!"

"यह क्या कर रहे हैं?" गोमती हाँफती हुई चिल्लायी, "क्या मार डालेंगे इन्हें?"

कलिय'का ने एक गन्दी-सी गाली दी। फिर गोमती की माँ का सम्बन्ध अपने बैल से जोड़ते हुए बोले, "बड़ी आयी है बालिस्टर की बच्ची! तुझे भी आज इसी में मिसा दूँगा। बेशरम राँड में जोबन चढ़ा है। पता नहीं सारा दिन कहाँ-कहाँ घूमती-फिर्ती है?"

गोमती गीली ज़मीन पर से पिरमा को उठाने के लिए झुकी ही थी कि तेजुवा ने उसकी बाँह मरोड़कर दूर खेत में औंधे मुँह पटक दिया, "इस साले के कारण हमारी सारी फसल चौपट हो गयी। इसीलिए इस मिड़गुवा को भेजा था कि कम्बल ओढ़कर सोया रहे! गाँव-भर के डँगरों ने सारे खेत रौंद दिये। एक भी हरा बोट नहीं बचा!"

"अब के मुझे माफ कर दो—इनका कसूर!" गोमती तन पर लगी गीली मिट्टी हाथ से पोंछती हुई विनीत स्वर में बोली, "कुछ दिनों से इन्हें जर-बुखार आ रहा है। रात को कँपकँपी छूटती है। टोल आने के कारण उठ नहीं पाये होंगे। आपके खेतों में जितना नुकसान हुआ, पाई-पाई भर दूँगी। चाहे दूसरों के खेतों में चाकरी करनी पड़े! ब्याँनधुरा देवता की सौं खाकर कहती हूँ....।"

"यह नंगी राँड चुका देगी, हमारा नुकसान!" मुँह चिढ़ाते हुए तेजराम बोला, "सुसरी, तू परे हटती है या इसी में तुझे भी मिसा दूँ?"

उसने ज़मीन पर लेटे पिरमा को पीठ पर एक ठोकर जमायी कि वह "ओ इजा!" कहता हुआ जोर से चीख पड़ा।

"हे ला, ओ गों वालो, कोई सुन्ते हो! इन लोगों ने हमें जान से मार डाला....!" गाँववालों को आवाज़ देने के लिए गोमती चीत्कार कर ही

ही थी कि सामने रास्ते पर टार्च का जैसा झिलमिल प्रकाश दीखा।

"क्या हुआ ? क्या हुआ ?" एक आदमी दौड़ता हुआ शोरगुल की तरफ़ कूदा।

आवाज़ से किसी ने पहचाना नहीं, पर पास आने पर टार्च के उजियाले में देखा—देवराम है, पिरमा का छोटा भाई। मिलिट्री की वरदी पहने, अचरज से खड़ा देख रहा है !

जो जहाँ पर जैसा खड़ा था, काष्ठवत् वैसा ही रह गया। पाँवों के पास पिरमा घुटनों में मुँह छिपाये कीचड़ में डूबा था। कलिय'का के हाथ की लाठी हाथ में ही धरी की धरी रह गयी थी। तेजराम भीगा फटा जूता उठाये हुए था।

"क्यों, क्या हुआ बोज्यू ?" गोमती भाभी की ओर जैसे ही देवराम ने देखा, गोमती दहाड़ मारकर रो पड़ी, "देवर ज्यू, यही नरक भोग रहे हैं हम, जब से तुम लाम पर गये हो....!"

भाभी का करुण रुदन सुनकर देवराम का दिल दहल उठा। क्षण-भर में सारी स्थिति ताड़कर बोला, "क्या बात है कका ? क्यों पीट रहे हो इन्हें ?"

"........।"

उसने भृकुटियाँ चढ़ाते हुए कहा, "धरम-करमवाले बनते हो ! मूँछों के बाल तक फूलकर सफ़ेद हो गये हैं, पर थोड़ी-सी भी लाज नहीं ! इस बेचारे पागल को यों बेरहमी से पीट रहे हो ? मैं पूछता हूँ—क्यों ?"

"तुम्हें क्या पता ? इसने हमारे सारे खेत आज चौपट कर दिये !" तेजराम बाप का पक्ष लेने के लिए हुमककर आगे आया ही था कि देवर ने कालर के पास से, उसका फटा कोट मुट्ठी में भींचकर झटके से खी और मिलिट्री के सधे हुए हाथ से कसकर एक झांपड़ लगाया कि वह की तरह लोटता हुआ मँडुवे के खेत में जा गिरा।

"कका, बाप की उमर के हो। बाप की तरह ही माना है तु नहीं तो आज टुकड़े-टुकड़े कर खेत में बिखेर देता....!" देवराम

कगार

पीकर बोला, "चलो, बोज्यू घर !"

ज़मीन पर गिरे भाई का हाथ पकड़कर उसने उठाया तो देखा—अभी तक भी वह भय से थर-थर काँप रहा है! हाथों पर, पाँवों पर, मुँह पर ख़ून के साथ तमाम कीचड़ ही कीचड़ सना है। पहचाना तक नहीं जा रहा !

बैग से मिलिट्री का खाकी रंग का धुला झाड़न निकालकर ठुल'दा का मुँह साफ़ करने लगा। उसका हाथ थामकर चौबटिया पर आया ही था कि नाशपाती के पेड़ के नीचे छनमन-सी हुई, जैसे खरगोश भागा हो !

देवराम ने उधर टार्च लगायी थी कि गोमती बोली, "हमारा कुनुवा होगा !"

पेड़ की आड़ में भयभीत मेमने की तरह दुबका कुन्नू बाहर आया।

"क्यों ? हूँ ला, छिपा क्यों था रे ?"

वह कुछ बोल न पाया तो गोमती ने कहा, "मारपीट देखकर डर गया होगा। एक दिन सारी रात बाहर पयाल के ढेर में ही दुबका रहा....।"

देवराम ने लपककर उसे पकड़ा और गोदी में उठा लिया।

कलफ़ लगे कपड़ों पर कीचड़ के दाग़ पड़ गये, पर उसने ध्यान दिया नहीं।

□

झीनी झोपड़ी। तुम्बी-भर अनाज। टूटे-फूटे दो-चार बरतन। रस्सी पर टँगे कुछ चीथड़े !

घर वैसा ही था, जैसा लाम पर जाते समय छोड़ गया था।

पत्नी के गुज़र जाने के बाद उसने फिर विवाह नहीं किया था। पहले गोमती हर पत्र में विवाह की बात लिखवाया करती थी, पर धीरे-धीरे सब छूट गया था। कलकोट, भिगराड़ा, रौत्यूड़ा, भौंरा—कितनी जगहों से बात उठी थी, किन्तु उसने सबको ठुकरा दिया था। गोमती कभी ज़िक्र करती तो कहता, "क्या रखा है बोज्यू ! मेरा तो मन ही बदल गया है।

लाम की जिन्दगी का क्या भरोसा ? मैं मोर्चे पर भटकता रहूँ, और यहाँ
उनकी कोई देख-रेख नहीं । सुन्दर'का के घर का क्या हुआ ? काकी एक
ही साल में दूसरे के घर में बैठ गयी थी !"

"हूँ हो, तो क्या लामवाले ब्या ही नहीं करते ?"

"करते क्यों नहीं ? सब अपनी-अपनी समझ है ! यों भली लड़की
मिल जाये तो मैं मना नहीं करूँगा । पर, मुझे पता है, जैसी मैं चाहता हूँ,
मिलने से रही !" वह शरारत से हँस पड़ता ।

इस बार गोमती के मैके की एक लड़की का जिक्र आया था । भली,
सयानी थी—नहाने-धोनेवाली । घर का काम-काज जानती थी । गोमती
सोचती थी कि परमेसर की कृपा से बच-बचाकर आयें तो वह पाँव उलझा
देगी ।

भोजन के समय गोमती ने बात छेड़ी तो बड़ी अनिच्छा से देवराम
बोला, "यह सब देखकर मन बदल गया है बोज्यू ! आप लोगों की ही
हालत नहीं सुधर रही है, उसपर एक नये प्राणी को लाकर क्या होगा ?"

देवराम चुपचाप कनका के गरम फुलके सलासल निगलता रहा ।

उसे पता था—घर में कुछ भी न था । जिसु'का के घर से पैंचा लाये
हैं आटा । कल बाहर कहीं मजदूरी करके चुका देंगे ।

"थोकदार ज्यू ने चिट्ठी लिखवायी थी, मिली नहीं लला ?"

"ना बोज्यू ।" देवराम ने उत्तर दिया, "मुद्दत से आप लोगों की कोई
कुशल-बात ही न मिली । इसीलिए फिकर हो रही थी । सोच रहा था—
कुल'दा कहीं बीमार तो नहीं !"

कुछ सोचता हुआ देवराम बोला, "अब क्या हाल है कुल'दा का ?"

"ठीक तो रहे हो !" गोमती ने गहरी साँस ली, "गुमसुम-से
रहते हैं—निठुआ की तरह जहाँ बिठला दिया । न खाने की सुध
पीने की । गाँजा-अतर की दम लगा ली, फिर दीन-दुनिया की कोई
नहीं । उसका फायदा तुम्हारे कका उठा रहे हैं । रात-भर टाल्ट के
की रखवाली करवाते हैं, दिन में गाय-डंगरों को चराने जंगल में

कनार

हैं। मैं मना करती हूं तो बनकाटी उठाकर मेरा सिर काटने को आते हैं। आज देख ही लिया—शुद्ध ! निठोर हैं—पत्थर ! इन पर हाथ उठाने-जैसी लगती कैसे होगी उन्हें ? जब-तब धमकाते रहते हैं !" गोमती ने अपनी आँगड़ी उचेड़कर पीठ दिखलायी, "देखो हो, ये ऐसे हत्यारे हैं !"

देवराम सन्न रह गया। देर तक कुछ भी बोल न पाया। बोज्यू की पीठ पर पड़े नीले-नीले डोरे देखकर आँखों में खून छड़क आया, "क्या करूँ बोज्यू, मैं इनकी खाल उधेड़ देता ! गोली से भून देता, पर कुछ ऐसा गियान आ गया है कि हाथ उठ नहीं पाते। कका हैं, बाप की ठौर पर—बस, यही विचार रास्ता रोक लेता है। ये तो निरे भुस्स हैं—जानवरों से भी गये-गुजरे। क्या हम भी वैसे ही हो जायें ?"

देवर का चेहरा गोमती देखती रही—निर्निमेष।

जूठे हाथ धोने के बाद देवराम अपनी बक्सी की चाबी खोजने लगा। जेबें टटोलता हुआ बोला, "बोज्यू, ठुल'दा का कभी इलाज-विलाज नहीं करवाया ?"

"क्यों नहीं ? सब कुछ करवाया देवर ज्यू। झाड़-फूंक किया। दवाई-पताई की। घोड़िया-डाकटर का भी इलाज चला....।"

गोमती का वाक्य अभी पूरा भी न हो पाया कि देवराम ने टोका, "तुमारा भी जवाब नहीं बोज्यू, घोड़िया-डाक्टर तो जानवरों का इलाज करता है, आदमियों का नहीं !"

"हम आदमी ही कहाँ हैं देवर ज्यू ?" गोमती ने तनिक गम्भीरता से कहा, "मैं ब्यांनचूरा बीच कह रही हूं, घोड़िया-डाकटर की दवाई से ही इनको कुछ आराम हुआ। तुमारे कका से यह देखा न गया तो उसके साथ मेरे किस्से गढ़ने शुरू कर दिये। बदनामी के डर से बेचारा अब इधर फटकता तक नहीं। जात से बामन है न ! उसपर टाल लगाने लगे !"

देवराम चाबी न मिल पाने के कारण परेशान हो रहा था। अतः गोमती ने सुबह उजेले में ढूंढ़ लेने का सुझाव दिया। चूल्हे की आग भी अब धीमी थी। इसलिए उस घुप्प अँधियारे में कुछ सूझ न पा रहा था।

"बच्चों के हाथ पर कुछ मिठाई-सिठाई तो रख दूं !"

पैण्ट की पिछली जेब में पीतल की पीली चाबी मिल ही गयी तो वह झटपट ताला खोलने लगा।

टनकपुर-मण्डी से ख़रीदे पेड़े उसने प्लास्टिक की सफ़ेद थैली से निकाले और एक काग़ज़ पर बिखेर दिये।

कुन्नू दोनों हाथों से मिठाई मुंह में ठूंसने लगा। गोमती ने भी कुछ चखी। चार-पाँच पेड़े ठुल'दा के हाथ पर रख दिये।

जब देर तक पेड़े वैसे ही धरे के धरे रह गये तो देवराम ने झकझोरा,

"ठुल'दा, देख क्या रहे हो ? खाओ न !"

ठुल'दा पता नहीं किस दुनिया में थे ?

टप्-टप् ! दो बूँदें गरम पानी की आँखों से फिसलकर पेड़े पर जा गिरीं !

सात–

सुबह धौंकनियाँ चल रही थीं। लोहारों के जगह-जगह आकर धधक
रहे थे। गरम लाल लोहे के टुकड़े पर घन की भारी चोट पड़ती तो सारे
और चिनगारियाँ-सी फूटने लगतीं।

अपने आँगन में ही बैठा रहा वह। गाँव में किसी से मिलने न गया
मिलने की इच्छा ही न रही थी।

धूप में पिछिड़ी का कम्बल बिछाकर आँखें मूँदे लेटा रहा।

घर की हालत इतनी बदतर होगी—उसने सोचा न था....। जाड़ों में जब बर्फ़ गि

—झोपड़ी की मरम्मत करवानी है।

ये बिचारे कैसे रहेंगे ?

—मायावती के मुफ़्त-अस्पताल में ठुल'दा का इलाज क

लगा

शरीर में कुछ ताक़त आने पर, शायद दिमाग़ भी ढंग से काम करना शुरू कर दे !

—पोखरी के थोकदार का पुराना क़र्ज़ा है। ब्याज के कुछ रुपये तो चुकाने ही होंगे। नहीं तो मेरे जाने के बाद इन्हें तंग करेंगे !

—बजार के तीन तलाऊँ खेत कका के यहाँ गिरवी पड़े हैं। वही छूट जाते तो इनके खाने-पीने की समस्या कुछ हल हो जाती ! दूसरों के खेतों पर कब तक काम करेंगे ?

—पटवारी को भी लम्बे हाथ से लेना पड़ेगा। आगे फिर ऐसा-वैसा किया तो अपनी रेजिमेण्ट से डिप्टी कलक्टर को शिकायत की चिट्ठी लिखवाऊँगा।

—कका को भी समझाना होगा कि इन विचारों पर हाथ न उठायें। जब घर के हिस्से हो गये, जमीन भी बँट गयी तो फिर इन्हें अपनी बेगार में क्यों लगाते हो ? बँटवारे के समय ही आपने क्या दिया इन्हें ? खाने-पकाने के लिए भाँड़े-बरतन भी पूरे नहीं !

उसी दिन शाम को देवराम तल्ला कमलेक से एक दूध देनेवाली छेली बकरी खरीद लाया। कुनुवाँ बंजर खेतों में चरायेगा और दो मुट्ठी दूध ठुल'दा को भी कभी-कभी मिल जायेगा !

ठुल'दा के लिए कुरता-पैजामा, बोज्यू के लिए धोती और आँगड़ी, कुन्नू के लिए सन्तरास का टुकड़ा वह बरेली से ही खरीदकर लाया था।

"मेरी बदली अगर अम्बाला-कैण्ट को हो गयी तो बोज्यू, ठुल'दा को वहीं बुलाकर इलाज करवाऊँगा। तुम निश्चिन्त रहो। पहले की तरह ठुल'दा फिर खेतों में काम करेंगे। आठ-दस मन लोहा मण्डी से भिजवा दूँगा। कूट-पीटकर बरतन ही बनायेंगे, तब भी कपड़े-लत्ते का गुजारा चल ही जायेगा !"

देवराम योजनाएँ बना ही रहा था अभी, उसे घर आये चार-छह दिन ही बीत पाये थे कि एक दिन खेतीखान से डाकिया आया और एक जरूरी चिट्ठी थमाकर चला गया।

...ल्दी रेजिमैण्ट में हाजिर होओ....!"

...क्-से बैठा का बैठा रह गया देवराम !

...देश पर विदेशी आक्रमण का खतरा दिन पर दिन बढ़ता चला जा ...था । समाचारपत्र तथा रेडियो से तरह-तरह की खबरें आ रही थीं । ...सी भी क्षण विस्फोट का खतरा था—इतनी जल्दी स्थिति यहाँ तक ...हुँच जायेगी, उसे पता न था ।

इस बार पूरे दो महीने की छुट्टी में घर आया था वह । सोचता था, सभी नाते-बेलेवालों से मिल लेगा । कहीं मौजान लैठ गया तो शादी से भी इनकार न करेगा । पर, अब रेजिमैण्ट के अलावा उसे कुछ भी सूझ न रहा था ।

जल्दी-जल्दी सबसे मिल लिया । गाँव के दाने-सयानों से भी कह गया कि इनका ध्यान रखें । कलिय'का को इस तरह हाथ न उठाने दें ।

कलिय'का की काली करतूतों के बारे में पोखरी, चूनाबाट के दुकानों में भी खूब कह आया । सरपंच तथा ग्राम-सभा के सभापति से भी ।

□

सूरज अभी उगा न था । चारों ओर घना कुहरा छाया हुआ था । पिरमा के कन्धे में छोटी-सी बक्सी और दरी में लिपटा हल्का-सा बिस्तर था । गोमती नन्हे बच्चे का हाथ थामे थी । देवराम पूरी वरदी पहने खमा-खम आगे-आगे चल रहा था । पथरीली, सँकरी सड़क पर भारी बूटों की रगड़ से कर्र-कर्र की अजीब-सी आवाज आ रही थी । पोखरी से टनकपुर के लिए बस रवाना होने ही वाली थी, अतः उन्हें जल्दी थी ।

बस में जल्दी-जल्दी सामान चढ़ाकर, देवराम नीचे उतरा । जेब में से कुछ रुपये निकालकर गुम-सुम-से खड़े पिरमा के हाथ में रखता हु... बोला, "दुल'दा, तुम क्यों हिम्मत हारते हो ? ये लोग हाथ उठाते हैं... तुम भी एक बार कुल्हाड़ी घुमाकर इन्हें छोलिया-नाच दिखा दो न ! ... फांसी के तख्ते से मैं छुड़ाकर लाऊँगा, मैं । आदमी एक ही बार म...

दनार...

ठुल'दा....!"

"लला, ऐसा ही कर पाते तो आज हमारी यह गत न बनती...! तुम जाओ, घर की कुछ फिकर न करो। जैसा हमारे करम में होगा, भुगतेंगे। जाते समय तुम अपना जी छोटा न करो....!"

बस चलने लगी। लपककर देवराम अपनी सीट पर बैठ गया। उसे महसूस हो रहा था—चुशूल के मोर्चे की अपेक्षा शायद घर का मोर्चा अधिक कठिन है, कहीं अधिक कठिन....!

ओझल होता हुआ अपना गाँव, अपने खेत, अपने पेड़-पहाड़ वह देखता रहा। इस बार पता नहीं क्यों उसे रह-रहकर लग रहा था—कहीं अपनी जन्मभूमि के यही अन्तिम दर्शन तो नहीं!

आठ-

कलिय'का का पारा चढ़ा था। पोखरी की दुकानों में सबने मिलकर खूब थू-थू की।

"सुना है कि देवराम ने सरकार की तरफ से चिट्ठी लिखा दी है हो कलराम! पटवारी ज्यू की ही नहीं, अब तुमारी भी आफत आनेवाली है। तुम्हें हथकड़ी लगेगी और तेजुवा जेल में चक्की पीसेगा। रामबाँस कूटेगा। तुम पिरमा पर ही नहीं, उसकी घरवाली पर भी हाथ चलाते हो न! गाँव-गिराम के दस गवाह इकट्ठे हो गये तो तुमको डूब मरने के लिए भी ठौर न मिलेगी। सारा सौकारपना धरा का धरा रह जायेगा। मालूम हो जायेगा कि कितनी बीसी के सैकड़ा होते हैं!" किशनसिंह थोकदार ने हुक्क़े पर सोस देते हुए कहा।

"द, तुम भी क्या बात करते हो, हो थोकदार ज्यू?" जैसा मेरे लिए तेजुवा, वैसा पिरमा! अपनी औलाद को कौन नहीं डराता-धमकाता हो—

जरा, बताओ तो ? मैंने भी उनके भले-बुरे के लिए कभी समझा-बुझा दिया तो भारी जुलम कर दिया ?" कलराम ने विवाद को समाप्त करने के ढंग से कहा ।

"पर, उस औरत जात ने क्या बिगाड़ा तुमारा ? उस दिन यहाँ आकर रो रही थी बिचारी ।" थोकदार खाँसते हुए बोले, "किसी पर जुल्म नहीं करना चाहिए कलराम ! अपना लोहार समझकर हम तो यही कहते हैं....।"

"अब क्या बताऊँ हो थोकदार सैप !" कलराम ने विवश-भाव से देखते हुए एक गहरी साँस ली, "उसके तो किस्से ही और हैं ! बड़ी बद-नामी हो गयी है हो । घर की बात इस बजार में क्या कहूँ ? हजारों के साथ इसके हजार किस्से हैं । कभी एकान्त में सुनाऊँगा तो तुम भी कहोगे कि कलराम ठीक ही करता है ।"

"वह तो कुछ और ही बात सुना रही थी तुमारी । खैर, छोड़ो भी । हमें क्या ?" थोकदार ने नारियल की काली चिलम फिर दोनों हाथों के बीच जकड़ी और भूरे धुएँ का गुबार बड़ा छोड़ा ।

तभी पास ही चाय की भट्टी पर गीले हाथ सेंकता हुआ गुमानसिंह बोला, "कलराम, तुम्हारी सारी बातें हम सच्ची-सच्ची मान लेते हैं, पर यार, भगवती मय्या की कसम खाकर कहो, तुम उस पागल बेचारे से बेगार क्यों करवाते हो ? उस गरीब के अपने भी बाल-बच्चे हैं यार ! दाने-दाने के लिए इधर-उधर भीख माँगते फिरते हैं !"

कलिय'का इस बार बौखला उठे, "तुम भी पधान, जाने बिना ही कह देते हो ! तुमको पता भी है कि पिरमा की माँ के किरिया-करम का खर्चा किसने दिया था ?" अपना सीना ठोकते हुए कलिय'का ने कहा, "क़र्जा लेकर पापिन पर कफ़न मैंने डाला था, मैंने ! उसे चुकाने को तो कोई नहीं कहता । यदि ब्याज के रूप में थोड़ा-बहुत काम कभी करवा लेता हूँ तो सबकी आँखों में चुभता है !"

कलराम ने उठने की तैयारी में कन्धे पर पड़ी पंखी ठीक की । बोले,

"पधान, हमारे गुसाईं हो ! बुरा मत मानना हो। लर्धान-कमलेकवाले सबको यही चिढ़ है कि कलिया दो रोटी क्यों खा रहा है ?"

कलराम फिर अधिक बैठे नहीं, उठकर चले गये। देवराम ने सरकार तक बात पहुँचा दी—टूटे काँटे की कनी की तरह यह उनके अन्तर में बार-बार कसकती रही।

देविया बुरा नहीं, पिरमा भी गऊ है। सारे झगड़े की जड़ बस, यही रांड है। इसी ने देविया साले के कान भर-भरकर सारे इलाके में मेरी बदनामी करा दी। दस जनों के बीच नंगी कर, इसके शरीर पर काँटेदार, झलझलाती बिच्छू की टहनी से झपाझप् झाल न लगायी तो मुझे हजार लानत ! जब तक यह इस घर में रहेगी, हमारा चैन से रहना सम्भव नहीं। इसलिए पहले इस रांड को ही ठिकाने लगाना होगा। यह मर मुके या गाँव छोड़ जाये—इनमें से एक बात होकर रहेगी....!

अँधेरे में, अकेले बैठे कलिय'का दाँत पीसते रहे। तभी तेजुवा ने खबर दी कि सरपंच से भी देविया हमारी बुराई कर आया है, पटवारी ज्यू से भी !

□

उस रात ज्यों ही बारिश हुई तेजुवा बाप के साथ फावड़े लेकर, अन्धकार में चुपके से बाहर निकला और कच्ची मिट्टी के आँगन के आगे पानी की नाली इस तरह काटने लगा कि गाँव-भर का सारा पानी नाले की शक्ल में बद्-बद् पिरमा के घर में फैल जाये।

क्षण-भर में नाले ने दिशा बदली और पिरमा के घर का सारा सामान तैरने लगा। बिस्तर-भांडे सब बिखर गये। झोपड़ी के खम्भे चरमराकर गिरने ही वाले थे कि गोमती कुदाल थामे, बरखा की बौछारों में भीगती बाहर कूदी। दोनों हाथों से मिट्टी हटाकर उसने नाली की दिशा ही मोड़ दी।

हांफती हुई वह भीतर आयी—सिर से पैरों तक पूरी की पूरी नहायी !

घर में ढेर सारी गीली मिट्टी भर गयी थी। सारा सामान भीग चुका था। आटा, चावल, नमक, तेल कुछ भी शेष न रहा।

नाममात्र के झीने, गीले कपड़ों में लिपटी ठण्ड से काँपने लगी। कुन्नू बन्दर की तरह उछलकर काठ के सन्दूक़ पर चढ़ गया था। मैमने को भी ऊपर चढ़ाकर गोदी में बिठा लिया था। गोमती के साथ-साथ पिरमा भी थाली और पतीली से पानी उलीच-उलीचकर बाहर फेंकने लगा।

घुटने-घुटने तक पानी में डूबी बकरी देर तक मिमियाती रही।

इस घटना के तीन-चार ही दिन बाद रात को गोमती मँडुवे-मांदरे के कुछ दाने पीसकर पनचक्की-घर से लौटी ही थी कि कुन्नू को आँगन पर सिसकते पाया।

"कि भौ कुना ?"

"हमारी बकरी मर गयी इजा !" आस्तीन से ही अपनी बहती नाक पोंछते हुए कुनुवाँ ने उत्तर दिया।

"कैसे मरी ? कहाँ मरी ?" वह चिल्लायी।

मरी बकरी के पास ही कुनुवाँ बैठा था। उसकी बर्फ़-सी ठण्डी पीठ सहलाता हुआ रो रहा था। पास ही मरा मेमना पड़ा था। उसकी बड़ी-बड़ी निरीह आँखें खुली थीं।

"उलैंचा के पेड़ से दोनों को बाँधकर मैं पानी लाने नौला गया था। वहीं से एक आँठी हरिया घास की भी काट लाया। पानी और घास लेकर लौटा तो देखा—दोनों लमलेट पड़े हैं। तेजू'का ने सुना तो किसी से कह रहे थे—साँप ने काट खाया होगा। उलैंचा के पेड़ के नीचे परसों ही उन्होंने काला फनियल देखा था।"

गोमती की आँखों में खून के आँसू उमड़ आये। ज़ोर से अपना कपाल दबाती हुई बैठ गयी, "जब तू घास लेकर आ रहा था, उलैंचा के पेड़ के पास तूने किसी को देखा था ?"

"तेजु'का कन्धे पर हल रखकर ऊपर जा रहे थे—जल्दी-जल्दी !"

"कहाँ से ?"

"उलैंचा के पेड़वाले रस्ते से....।"

देखते-देखते लोगों का गिरदम्म लग गया। सबका यही अनुमान था कि बकरियों को साँप ने ही काट खाया होगा। उनका रंग नीला पड़ गया था। मुँह से तमाम झाग।

सच्ची बात गोमती जानती थी, पर कौन देता उसका साथ ? इसलिए होंठ सिये चुप बैठी रही।

कभी कटोरी ग़ायब हो जाती तो कभी करछी। फटी दरी का टुकड़ा बाहर घाम में सुखाने के लिए डाला तो शाम तक वह भी नदारद !

जाड़ों में आग तापने के लिए सूखी लकड़ियों की बड़ी-सी ठेली उसने इकट्ठी कर रखी थी, कुछ ही दिनों में वह भी चौथाई रह गयी !

अपनी व्यथा का दंश गोमती स्वयं सहती रही। कुछ कहने का अर्थ था—तूफ़ान मचना ! पहले तो एक-दो ही जने आते थे झगड़ने, पर अब चील-कौवों की तरह घेरकर, छोटे-बड़े सब झपटते।

गाँव के लोग डर के मारे मुँह नहीं खोलते। ज्यों ही झगड़ा होता, सब अपने-अपने घरों में किवाड़ मूँदकर छिप जाते। कहीं कोई मर पड़ा तो गवाही भुगतने अदालत तक जाना पड़ेगा।

यह सारा सन्ताप गोमती अब तक किसी तरह झेलती रही, पर एक दिन रहा-सहा धीरज भी जाता रहा—

कोरे आकाश से वज्र बरस पड़ा।

पिरमा के नाम लाम से सरकारी चिट्ठी आयी—

—सिपाही देवराम पाकिस्तान के मोर्चे पर शहीद हो गया !

दिन में ही तारे छिटक आये गोमती के लिए। उसे पता था, देवर के भय से ही अब तक ये लोग कुछ दबे रहे, पर अब वह डर भी जाता रहा आज।

गोमती की आँखों के आँसू न जाने कहाँ खो गये थे ? चाहकर भी वह रो न पा रही थी। निष्प्राण प्रतिमा की तरह सारा काम कर रही थी।

एक कोने में जौ की ढेरी के ऊपर दीया वाल दिया। पिरमा सिर मुड़ाकर, पंखी लपेटकर क्रिया में बैठ गया। हित-मित्र, नाते-रिश्तेवाले आते रहे, सहानुभूति जतलाने। किन्तु कलिय'का के घर से एक भी आदमी झाँकने तक न आया।

घर में कुछ था नहीं। इसलिए थोकदार के पास रहे-सहे दो खेत भी गिरवी रख दिये।

क्रिया-करम में गोमती ने कुछ भी क़सर न रहने दी। जहाँ-जहाँ जो चाहिए था, सब जुटाया। तेरहवीं के दिन मुचाने के लिए पन्द्रह रुपये में एक बछड़ा खरीदना भी न भूली।

अभी दो-तीन ही महीने तो हुए थे, देवराम को छुट्टियों में घर आये। उसका यों चला जाना, गोमती को सच न लग रहा था। उसका शंकालु मन कितनी-कितनी बातें सोच रहा था—कहीं किसी ने झूठ नहीं लिखवा दिया ? दस दुसमन हैं। किसका क्या भरोसा ?

सुना था, कलिय'का ठहाका लगाते हुए हँस रहे थे—बड़ा गुमान करती थी राँड ! अब देखते हैं, इसकी मदद के लिए इसका कौन-सा खसम आता है ?



पीपल-पानी के बाद सब अपने-अपने घरों को चले गये, इसलिए सूनापन अधिक व्याप रहा था। किसी ने भी आज खाना न खाया। सब यों ही भूखे सो गये थे।

एक ही सहारा था, वह भी न रहा आज ! अपनी दोनों हथेलियों में मुँह छिपाकर, गोमती सिसक-सिसककर रो रही थी। पिरमा अँधेरे में आँखें खोले पता नहीं क्या सोच रहा था ? उसके घुटनों के पास बोरी के मैले टुकड़े पर कुन्नू सो रहा था। दिन-भर का थका था। पिण्डदान के समय सबके साथ-साथ नीचे नदी तक चला गया था। लौटने पर पूछता था, "कका अब लौटकर कभी नहीं आयेंगे इजा ?"

सारा गाँव सो गया था। अँधेरा आज कुछ अधिक लग रहा था, शायद अमावस की रात थी।

तभी आँगन में सूखी घास पर किसी के चलने की आहट हुई।

गोमती उझककर झाँके, इससे पहले ही भड़ाक् की आवाज़ हुई और किवाड़ झटके से टूटकर नीचे गिर पड़ा।

"कहाँ है यह कुतिया? निकल बाहर।" तेजुवा की कड़कती हुई आवाज़ थी।

उसके हाथ में चीड़ का जलता हुआ लम्बा छिलका था। उसी के साथ बड़ी हँसिया पकड़ी थी। दूसरे हाथ से सोयी हुई गोमती के बाल खींचता हुआ बोला, "यहाँ रो किसके लिए रही है बदजात? चल, मेरे घर चल! आज से मेरी रखैल बनकर रहेगी। पिरमुँआ के मरने तक का इन्तजार अब मैं नहीं कर सकता।"

गोमती बदहवास-सी चिल्लायी। कुन्नू भी चीखा।

प्रतिरोध में वह हाथ खींच रही थी, किन्तु उसकी जकड़ कसती चली गयी। फ़र्श पर घिसटती हुई गोमती ने कातर-दृष्टि से पिरमा की ओर देखा, पर वह बिस्तर पर वैसा ही बैठा रहा—अपना सिर घुटनों में गड़ाये!

अन्धकार में मर्म-भेदी चीख-पुकार सुनकर पास-पड़ोस के बहुत से लोग तन के कपड़े सँभालते हुए बिछौनों से उठ-उठकर चले आये।

तेजुवा सिर पर आज कफ़न बाँधे खड़ा था। हँसिया घुमाता हुआ सबको सम्बोधित कर बोला, "खबरदार! जो साला हमदर्दी जतलाने आगे आयेगा उसी के टुकड़े कर दूँगा। यह हमारे घर का मामला है, अन्दरूनी परिवार का! इस झमेले में किसी के पड़ने की जरूरत नहीं....!"

गोमती की नंगी बाँह घसीटकर बाहर ले गया और अपने घर के भीतर पहुँचकर जोर से कुण्डा लगा दिया।

क्षण-भर में यह क्या हो गया? लोग हतप्रभ-से देखते रह गये।

लड़ते-झगड़ते थककर गोमती जब निढाल अचेत-सी पड़ गयी तो

तेजुवा ने उसके सारे कपड़े चीर-चीरकर चीथड़े कर दिये। उसके मुंह में कपड़ा ठूँसकर, पाशविक प्रवृत्ति के प्रदर्शन पर उतर आया।

भरकते चीड़ के छिलके के पीले उजियाले में वह भूखे हिंस्र-पशु की तरह उसकी नग्न देह देखता रहा।

तभी गोमती ने कराहते हुए करवट बदली। ज्यों ही पलकें खोलीं, तेजुवा का चेहरा सामने दीखा, उसके सारे शरीर में आग-सी लग गयी। बिजली की लहर-सी कौंध गयी। प्रतिहिंसा की ज्वाला उसकी आँखों में धधकने लगी। पता नहीं क्या हुआ उसे? भूखी सिंहनी-सी उसपर ज़ोर से झपटी। जलता हुआ छिलका उसके मुंह पर दे मारा और दोनों हाथों के पंजे उसकी गरदन पर इतनी ज़ोर से गड़ाये कि तेजुवा का शरीर धीरे-धीरे शिथिल पड़ने लगा और वह गों-गों-गों करता हुआ एक ओर लुढ़क पड़ा।

निविड़ अन्धकार में झटपट गोमती ने काँपते हुए हाथों से किवाड़ की कुण्डी टटोली। पास पड़ी झीनी चादर यों ही तनपर फेंकी और बिल्ली कीतरह उछलकर बाहर कूदी।

उसका कूदना ही था कि कलिय'का गँड़ासा उठाकर पीछे भागे, पर वह पकड़ में न आयी। बियाबान वन में न जाने कहाँ ग़ायब हो गयी?

नौ—

—गोमती नदी में डूबकर मर गयी।

—गोमती ने किसी छिछली चट्टान से कूदकर आत्महत्या कर ली है। चीड़-वनों के छिल्लाड़ में ग्वालों ने बहुत से गिद्ध मँड़राते देखे थे!

—गोमती को जंगल में बाघ ने खा लिया!

जितने मुँह उतनी बातें।

दिनों तक तेजराम घर से बाहर न निकला। जलते छिलके से उसका मुँह बुरी तरह झुलस गया था। गले पर भी नाखूनों के गहरे निशान थे। उस दिन मरता-मरता बचा था वह। कहीं कुछ और देर तक गला दबाये रहती तो न जाने क्या हो पड़ता!

वह सोचता था, डरा-धमकाकर गोमती को अपने घर में रख लेगा। कुछ दिन चीखेगी-चिल्लायेगी, फिर धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा। औरत जात है, भर पेट खाना मिल गया तो सब भूल-भुला जायेगी। आखिर उस विक्षिप्त से उसका लगाव भी क्या है? उसे तो अपने ही तन की सुध नहीं! फिर उसके पास रहकर क्या करेगी?

उस दिन नदी के चौड़े पाट पर वह नहा रही थी। बदाल की चिकनी जड़ें पत्थर पर कूटकर उससे सिर धो रही थी। नाममात्र के झीने कपड़ों में लिपटी वह कितनी आकर्षक लग रही थी! तरुण देह! संगमरमर का तराशा हुआ सुगढ़ शरीर—वह अन्धा हो गया था, निरा अन्धा! इसी अन्धेपन में उसे जो करारा तमाचा लगा, वह उसके शरीर ही नहीं, अन्तर को भी कहीं दूर तक बुरी तरह हिला गया था....।

बदला लेने के लिए उसकी फ़ौलादी बाँहें कसमसातीं, पर बदला किससे ले अब?

एक पाख भी पूरा अभी बीता न था कि किसी ने गाँव में आकर सुनाया कि गोमती मरी नहीं, नरसिंग डाँडा के खुशाल लोहार के घर बैठ गयी है। वह अपनी आँखों से देख आया है।

कलिय'का का बँधा मुँह यह सुनते ही सहसा खुल पड़ा, "अरे भौंना, इसी को कहते हैं—तिरिया चरित्तर! मैं तो च्यला, पहले से जानता था कि वह बदफेल किसी न किसी के संग लगी होगी। उसे तो घर से बाहर निकलने का बहाना चाहिए था!"

कलिय'का की सारी जिन्दगी 'कूटनीति' में ही बीती थी। कब कौन-सी तुरप चाल चलनी है, भली-भाँति जानते थे। खुशाल के घर गोमती यों ही बैठ जाये, उन्हें कब स्वीकार होता?

समाचार सुनते ही वह बुरी तरह भभक उठे।

तेजराम को भी अपने अपमान का बदला लेने का अवसर स्पष्ट दीख रहा था।

दो-तीन दिन तक व्यूह-रचना होती रही। चौथे दिन गाँव के ही पाँच-छह जवान छोकरों को साथ लेकर नरसिंग डाँडा के लिए निकल पड़े....।

आँगन के नीचे से ही ललकारते हुए कलिय'का गरजे, "हैं, ओ खुशिया, मेरे घर की बहू अपने घर रखनेवाला तू होता कौन है? निकल बाहर, अभी करता हूँ तेरे तीन तेरह!"

खुशालराम के घर में कोई कारज था आज। कुछ मेहमान आये हुए थे—नाते-रिश्तेदार। कठवाड़े से ही बाहर झाँकता हुआ बोला, "अरे, तू खाँड़ा बुड्ढा आज बहूवाला बनकर आया है क्या? भतीजे की कुगत करके बहू पर हाथ डालना चाहता था! पाखण्डी, टाँग तोड़कर तुझे वापस न भेजा तो मुझे 'लो-लो' कह देना। नरसिंह डांडे से तेरी लाश बाहर जायेगी आज....।"....

वाक्-युद्ध अभी चल ही रहा था कि गाय-डँगरों के बाड़े से सिर पर घास का गट्ठर उठाये गोमती आती दिखलाई दी। तेजराम उसकी ओर चील की तरह झपटा। सिर का गट्ठर दूर फेंकता हुआ चीखा, "कमजात, कुत्ती, चल घर! पिरमुंआ तुझे व्याह कर लाया है या यह साला खुशाल? तेरी पंचात वहीं बैठेगी!"

उसके हाथ पकड़ते ही, साथ आये दो-तीन छोकरे भी उसे घर के रास्ते की ओर जबरन खींचने लगे।

"छोड़, छोड़ कलचुड़िया! भाई-भौजवाला बड़ा बना है नौंहाल!" तेजराम की कलाई पर दाँत गड़ाती हुई चिल्लायी, "कीड़े पड़ेंगे तेरे! कीड़े! राकस, खवीस छोड़ दे...!"

खुशालराम को जल्दी में कुछ सूझा नहीं, कठवाड़े से ही कूद पड़ा वह। नीचे पट-आँगन में अनाज चूटने के लिए तीन-चार मोटे-मोटे तिरछे

डण्डे रखे थे। उनमें से एक उठाकर, काकड़ की तरह सीढ़ीनुमा खेत फाँदने लगा।

कलराम की झुकी पीठ पर ठलम्-से एक डण्डा जमाता हुआ तेजराम की ओर लपका ही था कि पीछे से किसी ने हाथ पकड़ लिया, "क्या कर रहे हो, ओ खुशाल'दा! कोई मर पड़ेगा....!" उसका ममेरा भाई और कुछ कहने ही जा रहा था कि खुशाल ने उसे धकेलकर एक ओर छिटक दिया।

गाँव के और लोग भी लाठियाँ-डण्डे लेकर आ धमके। समूचे गाँव की इज़्ज़त का सवाल था यह।

तेजराम पर डण्डे बरस रहे थे, पर वह गोमती की कलाई छोड़ने को तैयार न था। छीना-झपटी अभी चल ही रही थी कि खुशाल के छोटे भाई ने तेजराम के सीने पर ऐसा घूँसा जमाया कि वह वहीं पर ढेर हो गया।

उसका बदला लेने के लिए कलिय'का ने दोनों हाथों से बड़ा-सा पत्थर उठाया और उसके सिर पर दे मारा।

द्वन्द्व-युद्ध के इस दौर में देखते-देखते चार-पाँच लोग लहू-लुहान हो गये।

इतने में गाँव के पंच-पधान आदि बुज़ुर्गवार बीच में पड़ गये और मामला कुछ शान्त हुआ।

"मेरे भतीजे से जब इस औरत की शादी हुई है!" पधान को सम्बोधित कर, हाँफते हुए कलिय'का ने कहा, "तो इसके घर कैसे रह सकती है?" कलिय'का कपड़ों की धूल झाड़ने लगे।

"कलिया साले, तू इसे बहू की तरह मानता है?" खुशाल गरजा, "तू तो जिनावर से भी गया-गुजरा है! मैं डंके की चोट कह रहा हूँ—अब यह तुमारे गाँव नहीं जायेगी। जो करना है कर ले!"

"अरे, जायेगी कैसे नहीं?" तेजराम को अब तक कुछ-कुछ आ गये थे। कन्धे उचकाकर उसने कहा, "किसी दूसरे की औ

अपने घर में यों ही रख लेना कोई मजाक है ?"

"हाँ, हाँ, काने ! कर्ले जो कर्ना है ! लोघाट-चम्पावत की कचैरी के द्वार खुले पड़े हैं। तुझ-जैसों को तो मैं इस अँगूठे पर रखता हूँ !" खुशाल ने अँगूठा नचाते हुए उसकी ओर घृणा से देखा।

"यार खुशाल," नरसिंग डांडा के ही एक वृद्ध सज्जन बोले; "न्याय की बात कर। बुरा न मानना यार, सच तो बोलना ही पड़ेगा। अच्छा, तू ही बता, किसी की ब्याहता औरत को तू अपने घर किस तरह रख सकता है ? यदि रखना ही है तो तुझे मुआवज़ा चुकाना पड़ेगा। पाँच पंचों के बीच धड़ी भरनी होगी !"

"आप लोग कहेंगे तो उसे भी भर दूँगा, पर, अब इन लोगों ने इस पर हाथ लगाया तो एक-एक का सिर कलम कर दूँगा। फिर मुझसे न कहना बुबु....!"

"ले, जरा, कर कलम ! मैं भी देखूँ ?" आँखें तरेरकर तेजराम कह ही रहा था कि दूसरे पक्ष का एक और योद्धा खम ठोककर खड़ा हो गया—उसके सीने पर सवार होने के लिए।

"चुप, चुप कर !" उसी के दो-तीन साथी उसे पकड़कर दूर ले गये।

दोनों पक्षों में फिर बातचीत शुरू होने लगी।

अन्त में धड़ी भर देने के लिए दोनों राजी हो गये तो उसी समय केशवराम के चाक पर पंचायत बैठी। गोमती को भी बुलाया गया—कागज-पत्तर पर अँगूठा चेपने के लिए।

तय किया गया कि खुशालराम से नकद चार सौ रुपये लेकर कलराम, पिरमा की तरफ से पंचायतनामे में दसखत कर देगा। इसके बाद गोमती पर पिरमा का कोई हक-हकूब नहीं रहेगा। आज से वह खुशालराम के घर रहेगी—पत्नी की तरह। वही उसकी परबरस करेगा....।

खुशालराम ने धड़ी भरने का कागज़ अपनी अण्टी में कर चार सौ रुपये कलराम के मुँह पर दे मारे—

"हाँ, ये रुपये तुम्हारे नहीं कलराम !"

कलराम ने पीले, गन्दे दाँत निपोरते हुए कहा, ''एक ही घर की वात है। वीमार होने के कारण पिरमा न आ सका। घर जाकर उसे सोंप देंगे। क्या फर्क पड़ता है। एक ही घर है !'



अजव जीव निकले कलिय'का ! हार को भी जीत में वदल दिया उन्होंने। जाते-जाते भी इतना अधिक वसूल लिया ! गोमती कहीं भाग जाये—ऐसा तो कव से चाह रहे थे !

घर जाकर एक वण्डी पिरमा को पहना दी और झीना-सा एक सस्ता कुरता कुन्नू के गले में डाल दिया।

—कुनुवाँ भेड़-वकरियाँ चरायेगा।

—पिरमा लोहा पीटने में मदद देगा। धौंकनी तो दिन-भर चला ही सकता है !

दस—

गोमती के पास पहनने के लिए कपड़े न थे। दूसरों के कपड़े पहनकर अव तक किसी तरह लाज ढक रही थी। अतः खेतोखान की वाज़ार से खुशाल ख़रीद लाया। हाथों के लिए नन्दलाल सुनार के यहाँ से पतली-पतली चाँदी की दो धागलियाँ भी। आते समय आठ-दस चूड़ियाँ भी लाना न भूला था।

इतने रंग-विरंगे सुन्दर कपड़े, पोतलियों के पाँख-जैसे चमचम अपने जीवन में पहले कभी पहने न थे। उन्हें पहनकर उसका रूप और दमक उठा। नाक की फुली में दूध के छींटे के वरावर छोटा-सा सफ़ेद नग था !

वार-वार वह उस नग को छूकर देखती !

दरपन में गोमती ने अपना प्रतिविम्ब देखा तो ठगी-सी देखती रह गयी। पहले अचरज मिली खुशी का अहसास हुआ, पर धीरे-धीरे चेहरे का रंग उतरने-सा लगा। पता नहीं क्यों इतनी उदास हो आयी? उसे लगा—यही रूप उसके लिए अभिशाप वन गया है आज—जानलेवा! कितना कुछ इसके कारण झेला और कितना अभी और झेलना बाक़ी है!

उसने एक गहरी साँस ली और दरपन का मुँह दीवार की तरफ़ फेर दिया। उसे याद आया—

उस रात आत्महत्या करने का उसने पूरा निश्चय कर लिया था। नीचे घहराती, उफनती, उमड़ती बाढ़ आयी नदी के किनारे पहुँचकर एक छिछली चट्टान पर खड़ी हो गयी। सामने दूर बीहड़ वन की तलहटी में पनचक्की-घर के खण्डहर में चिराग़-सा टिमटिमा रहा था। उसकी ओर निर्निमेष वह ताकती रही।

किसी पर भी आस्था न रह गयी थी। घर के भाई-विरादर ऐसे खूँखार भेड़िये! गाँववाले लिण्डे—विना पूँछवाले! पति के सामने तेजुवा उसे घसीटकर ले गया, पर वह देखता रहा—पत्थर! ऐसे हुमने-जैसे मुरदा पति के साथ सारी जिन्दगी कैसे कटेगी? उसके सामने ही तेजुवा रोज़ वलात्कार करता रहेगा....!

उसका हृदय घोर घृणा से भर उठा।

प्रस्तर-प्रतिमा-सी वह न जाने कव तक इसी तरह अविचल खड़ी रही। तभी दूर कहीं सेव के पेड़ों के वीच वनी अँधियारी कुटिया से किसी वच्चे के रोने की जैसी आवाज़ आयी, जिसे सुनते ही उसकी सारी देह झनझना उठी।

कुन्नु की निरीह, उदास आकृति उसकी पलकों पर रह-रहकर तैरने लगी—

वह मर गयी तो उसका क्या होगा? क्या पागल पति उसकी देखरेख करेगा? या हत्यारे कका-काकी?

"नहीं-नहीं!" वह कराह उठी।

सामने जलते चिराग़ की ओर देखते-देखते तभी न जाने क्या हुआ उसे कि वह उसी दिशा में बावली-सी दौड़ती हुई भागी।

तन ढकने के लिए देह पर लपेटा नाममात्र का फटा चीथड़ा सनसनाती हवा में उड़ रहा था—उसे होश न था। फेन उगलती नदी उसने किस तरह पार की? कैसे उस पार पहुँची—उसे पता नहीं!

ठण्डे-चिसले पानी में नहायी, थुर-थुर कांपती, हांफती, बाल बिखेरे पनचक्की-घर के टूटे दरवाज़े पर खम्भे की तरह खड़ी हो गयी।

तमाम देह से पानी निथर रहा था!

नाज पीसने के लिए आज रात खुशाल आया था—अकेला। कोने पर जली आग के पास बैठा ऊँघ रहा था।

नदी के शोरगुल के साथ घर्र-घर्र आवाज़ आ रही थी। पानी की तेज़ धार से, पिनकी के सहारे ऊपरवाला पत्थर का विशाल पहिया पूरी रफ़्तार से घूम रहा था। रस्सी के सहारे ऊपर छत से टँगे काठ के बहुत बड़े धुमरैले दोने के नीचे से बर्-बर्-बर् चक्की के बीच में बने छिद्र में अनाज के दाने गिर रहे थे।

घान बदलने के इन्तज़ार में जाग रहा था वह। अन्यथा कम्बल की घोप्पी डालकर सो जाता। गेहूँ के बाद मँडुवा पीसना था अब। मँडुवे में मिलाने के लिए गेठी के सूखे टुकड़े भी घर से ही पोटली में बाँधकर लाया था।

घान बदलने ही वाला था कि द्वार पर बदहवास-सी अर्द्धनग्ना नारी देह देखकर चौंका। भय से पलकें खुली की खुली रह गयीं। उस ठिठुरती सर्दी में भी वह पसीने से बुरी तरह नहा आया।

पास ही श्मशान था।

हे परमेसर! आज कोई भूतनी आ पड़ी या चुड़ैल-डाकिन!

उसका चेहरा सफ़ेद पड़ गया।

"क-उ-औं-न?" कांपता हुआ वह चीखा।

गोमती भी उसके उड़े हुए होश-हवास देखकर घबरा गयी, "म-मैं....

ल-ल-घौंन की....।" अटक-अटककर बोली वह ।

"तो ऐसी भूतनी-सी क्यों खड़ी है तू ?" कड़ककर बोला ।

गोमती की आकृति उड़ी-उड़ी-सी थी, 'नदी में छाल मारना चाहती थी, पर....! मेरे करम फूट गये हैं ! हाय, मेरि कपालि !' दोनों हथेलियों में मुँह छिपाकर वह सिसकने लगी ।

खुशाल को समझते देर न लगी कि कोई खोटे करम की है अभागी ! अंगीठी के पास उसे बुलाकर अपना कम्बल उसे ओढ़ा दिया ।

गोमती की व्यथा-कथा सुनकर वह द्रवित हो उठा, "मरना क्यों चाहती है ? तेरे मरने से तो उन्हें ही फैदा होगा—यह क्यों भूल जाती है मुला ?"

"क्या करूँ ? कौन नहीं चाहता जिन्दा रहना ? पर वे सब मेरे परान को आ गये हैं । छोटा बालक है, उसी के कारण मर नहीं पा रही ! ये परान उड़ते भी तो नहीं....!"

खुशाल ने धीरज बँधाया । उसकी देह को सहलाता हुआ बोला, "बौला, मरने से क्या होगा ? मेरे घर चल । मैं रख लूँगा तुझे ! तेरी ही जात-बिरादरी का हूँ—सोर का । अब नरसिंग डाँडा के 'पलौट' में बस गया हूँ ।"

इस प्रस्ताव पर गोमती ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न की । जलते अंगारों की ओर निर्निमेष ताकती रही ।

खुशाल ने उसका हाथ थामा, तब भी उसने कोई प्रतिरोध न किया । रात के अँधियारे में उसके पीछे-पीछे चल पड़ी वह—रस्सी से बँधी गाय की तरह ।

☐

दो पत्नियाँ और थीं खुशालराम की । पर करम कुछ ऐसे रीते निकले कि किसी से भी सन्तान-सुख न मिला । इसलिए गोमती की दमकती देह के अलावा यह भी एक आकर्षण था । मरते समय पिण्ड-दान के

लिए सन्तान तो चाहिए ही थी, नहीं तो सद्गति कैसे सम्भव होती ?

घर के आँगन में मुँह-अँधेरे इस रूपवती नयी सौत को देखकर पहले तो दोनों पत्नियाँ चौंकीं, भभकीं, पर तभी खुशाल के प्रचण्ड रौद्र-रूप की कल्पना मात्र से सिहरकर चुप हो गयीं। उनके सन्तान न होने का तर्क खुशालराम का सबसे बड़ा नैतिक कवच था। घर-बाहर के कितने ही लोग, कई बार सुना भी चुके थे कि उसे एक शादी और कर लेनी चाहिए। कौन जाने किवाड़ खोलनेवाला प्राप्त हो ही जाये !

गोमती के घर पर पाँव रखते ही खुशालराम के रंग-ढंग बदल गये। होंठों के ऊपर झपकी बड़ी-बड़ी मूँछें कतर लीं। कपड़े भी ढंग से पहनने लगा अब। घर के आँगन पर पाँव रखते ही झुकी कमर सीधी कर लेता—तनकर चलने लगता। बीच-बीच में नशा-पानी के लिए खेतीखान से सुपारी भी मँगाकर चबाने लगा था। कच्ची तो पीता ही था।

पैंतालीस की उमर पार करने के पश्चात् भी क़द-काठी अभी काफ़ी मज़बूत थी। गोठ में दुधारू भैंस बँधी थी। बैल भी अब अपने थे। इन दो-तीन ही सालों में बुधानन्द पण्डत की सोबत ऐसी फली कि जिस खुशिया को हफ़्ते में तीन-तीन दिन भरपेट भोजन न मिलता था, वह दिन में तीन-तीन बार छककर खाने लगा। जाड़ों में पण्डत का फटा झोला कन्धे पर झपकाये, उनके पीछे-पीछे नेपाल की सरहद तक के कुछ चक्कर काट आता और साल-भर खाने का जुगाड़ कर लेता।

'काली-लछमी' की दया-माया से उसे किस बात की फ़िकर थी ? लोग कहें तो कहते रहें ! भरपेट खाता-पीता देखकर सब यों ही कुढ़ते हैं !

ग्यारह–

उस दिन घड़ी भरने के बाद जब सब चले गये तो उसे बड़ा चैन

मिला। कारज के लिए आये मेहमान भी शाम तक जा चुके थे।

खुशालराम की सारी शंकाएँ अब समाप्त हो चुकी थीं। सारे रास्ते साफ़ थे।

भोजन के बाद रात गोमती उसके कमरे में आयी तो पंचायतनामे का काग़ज उसे दिखाता हुआ बोला, "चार सौ की ठौल लगा गये कप्पन खसोट!"

"हूँ हो, कितने हुए चार सै?" जिज्ञासा से गोमती ने पूछा।

"बीस—बीसी!"

"बीस की एक बीसी!" अचरज से बोली वह "हाइ इजा! इतने रुपै तुमने उन्को सच्चो भी लपका दिये?"

"न देता तो क्या करता? जमदूत फिर हाँककर ले जाते तुझे और फिर करते कुकरगत!"

कृतज्ञ-भाव से गोमती उसको ओर देखती रही, "हाई इत्ता करजा कैसे चुकाओगे हो अब?"

इस बार ठहाका लगाकर हँस पड़ा खुशाल, "हत्तेरे की! इतना कँगला समझ रही है क्या?" उसे और पास खींचकर, उसकी बड़ी-बड़ी नीली आँखों में झुककर झाँकता हुआ बोला, "लाख भी कम हैं, तेरे लिए!"

गोमती मुसकरायी तो खुशाल ने उसे कसकर बाँहों में भींच लिया।

गोमती के साथ सामीप्य-सुख अब तक मिला न था। पनचक्की से आने के बाद दो-तीन रात उससे छेड़खानी का प्रयास भी किया, नीचे एकान्त में गोठ ले जाकर! पर वह बिना दाँतवाली अल्हड़ घोड़ी की तरह बिदक पड़ी थी, "जबतक सब तै नहीं हो जाता कि मैं तुम्हारे ही घर रहूँगी, तबतक ऐसा-वैसा कुछ न करो हो! तुम्को जौं हाथ करती हूँ....!"

"कह तो रहा हूँ कि वखत आने पर घड़ी भर दूँगा!"

"न, हो न! मैं ऐसी-वैसी नहीं, औरों की तरह! जब सारी उमर

तुमारे साथ रहना है, तो कुछ दिन नहीं ठैर सकते ?" उसकी ज़िद के आगे खुशाल ने हार मान ली और उसके तन के उघाड़े हुए वस्त्र स्वयं समेटकर ऊपर चला गया और गोमती अपनी दोनों सौतों के पास बिछौना डालकर सो गयी थी।

पर आज घड़ी भर जाने के कारण खुशाल अधिक उतावला हो रहा था। बड़ी से कहकर अपना बिस्तरा उसने भीतर, भकारवाले कमरे में अलग लगवा लिया था।

आले में धरा मिट्टी-तेल का लम्फू ढेर सारा धुआँ उगलता हुआ भभक रहा था।

"अब तो तुझको शिकायत नहीं—"

गोमती फिर मुसकरायी, "लम्फू निभा दो न! उजेले में मेरे को शरम लगती है।"

खुशाल अपनी आदत के अनुसार ज़ोर से हँसा, "तू तो ऐसा कर रही है, जैसा क्वाँरी-कन्या भी नहीं करती....।"

गोमती का गोरा मुखड़ा शरम से और सिन्दूरी हो गया।

"इस नाक पर नथ कितनी अच्छी लगेगी—बड़े-बड़े लाल चन्दक-वाली!" उसने गोमती की नाक दोनों अँगुलियों के बीच दबाते हुए कहा, "मैं लाऊँगा तो पहनेगी ?"

गोमती ने गद्‌गद होकर आँखें मींच लीं और हौले-से हँस पड़ी।

"तेरे दाँत तो कच्चे दाड़िम के दाने की तरह बड़े ही सुन्दर, सफेद हैं हो गोम्ती! देखें, कितने तेज हैं ?" उसके दाँतों के बीच खुशाल ने अपनी तर्जनी रखी तो गोमती ने हौले-से दबा दी।

खुशाल को सन्तुष्टि न हुई। बोला, "अरे, ऐसे थोड़े ही काटते हैं—"

"फिर कैसे ?"

गोमती की अँगुली अपने दाँतों के बीच धरकर खुशाल ने इतने ज़ोर दबायी कि गोमती सीत्कार कर उठी, "हाइ इजा! तुम यह क्या कर रहे हो हो ?"

दरवाज़े की दरार से रोशनी की एक धार बग़लवाले अँधियारे कमरे को भी चीर रही है, उन्हें पता न था।

दिन-भर के काम से थकी दोनों सौतें बिस्तर पर गिरते ही खर्राटे भरने लगती थीं, पर आज उनकी आँखों की नींद न जाने कहाँ हिरा गयी थी ?

दोनों की आँखें रोशनी की तीखी धार पर टिकी थीं और सिहरते सारे शरीर कान बन गये थे। अस्पष्ट-से टूटे-फूटे शब्दों को जोड़कर अपना-अपना अर्थ लगा रही थीं। उन्हें रह-रहकर वे दिन याद आ रहे थे, जब वे भी इसी तरह पहली बार भीतरवाले कमरे में गयी थीं—उनमें भी तब रूप था—ऐसी ही छलकती हुई भरपूर जवानी !

मँझली से रहा न गया तो बिछौने पर ही उठ बैठी और दरार पर कान लगाकर सुनने का प्रयास करने लगी—

"कल नारंगि लाया था—सिप्टी-सिमाड़ से। तुझे दिये बड़ी ने ?"

"हाँ, दिये थे—"

"बड़ी तो कहती थी कि तूने खाये नहीं, किसी के लिए छिपा के रख लिये थे ...!"

"खाये तो थे, सबके सामने—आँगन पर बैठकर, धूप में !"

"नहीं, नहीं, बड़ी कभी झूठ नहीं बोलती ! तूने जरूर कहीं छिपा लिये होंगे ?"

"कहाँ छिपाये ?"

"दिखा दूँ ?"

"हाँ—हाँ....!"

बातों के साथ-साथ खुशाल हौले-हौले उसकी आँगड़ी के बटन भी सहलाता रहा था। अन्त में कुछ टटोलता हुआ चहका—"चोर कहीं की ! दिखा दूँ....!"

गोमती उछलकर हँस पड़ी तो पूरी की पूरी उसने अपने में समेट ली।

पलकें धीरे-धीरे मुँदने ही लगी थीं कि गोमती को सहसा होश आया।

झपटकर उसने लम्फू बुझा दिया और रोशनी की दरार भी ओझल हो गयी।

कृतज्ञता से आकण्ठ डूबी गोमती शनैः-शनैः उसपर छा गयी, छाती चली गयी। नारी के इस सहज समर्पण का सुख उसे कहीं गहरे में डुबाता चला गया। जीवन में पहली बार उसे यह अद्‌भुत अनुभूति हुई थी, जिसमें आकण्ठ डूब गया वह !

सुबह खुशाल को काम पर जल्दी जाना था। अतः वह मुँह-अँधेरे ही बिछौना छोड़कर चला गया था, लेकिन परचेत-सी पड़ी गोमती देर तक सोयी रही।

मँझली बन्द कमरे में गयी तो खिड़की का द्वार तनिक उघाड़कर देखती रही—अभी तक भी गोमती बिस्तर पर बिछी खर्राटे भर रही है। कपड़े तमाम अस्त-व्यस्त हैं—बिखरे हुए।

केले के तने-सी सुडौल, स्वस्थ जंघाएँ ! दो ऊँचे टीले साँस के साथ गिर-उठ रहे हैं। गोरी-गोरी कलाइयों पर ढेर सारी हरी, लाल चूड़ियाँ, जिन्हें कल रात खुशाल ने पहनाया था।

—यही रांड़ राज करेगी अब इस घर में !

गहरी साँस लेकर उसने किवाड़ बन्द किये और बाहर निकल गयी।



पर इन सुख-सुविधाओं के बावजूद गोमती का मन लग न रहा था। हर क्षण एक अजीब-सी बेचैनी उसे घेरे रहती। न दिन को चैन, न रात को आराम। ज्यों ही एकान्त आता काले-काले बादल उमड़ने लगते। खुशाल खुशामद में लगा रहता। किसी भी तरह की कमी का अहसास न होने देता। वह स्वयं भी सब कुछ भूल जाना चाहती थी, पर भुला न पा रही थी अभागी !

दोनों सौतें भीतर ही भीतर जलने के बावजूद बाहर से गुड़ की डली की तरह मधुर बनी रहतीं। उन्हें भय था कि इससे कुछ कहने मात्र से

झंकी खुशाल छत पर जमा सारा धुआँरा चीख-चिल्लाकर झड़ा देगा !

उनके अन्तर को गोमती का झलझलाता रूप-रंग नहीं, अपना बाँझपन अधिक सालता था। खोट उन्हीं पर थी। खुशाल को वंश-बेल बढ़ाने के लिए कुछ तो करना ही था ! एक और आनी थी, यही आ गयी ! क्या फ़र्क़ पड़ता है ?

पर, गोमती दूर डाँडे-पहाड़ों पर भटकने लगी थी।

दूध का भरा गिलास देखती तो कुन्नू की याद आ जाती। इतना अन्न है यहाँ, कोई खा नहीं देता, उधर वह भूखा, पास-पड़ोस के रोटी खाते बच्चों का मुँह बिटर-बिटर ताकता होगा और लोग कुत्ते की तरह झिड़कते होंगे !

दुरलि का मैका लधौंन ही था। अभी कल ही वह आयी थी। वहीं के रिश्ते पर यहाँ भी बोज्यू ही कहकर सम्बोधित करती थी। कह रही थी, "पिरम'दा बहुत कमजोर हो गया है अब ! कलिय'का दिन-भर उसे काम पर छेपाये रखते हैं। थोड़ी-सी गलती होने पर बच्चों की तरह झिड़क देते हैं। कुनुवाँ बिचारे के लिए बकरियाँ खरीद दी हैं। जाड़े से ठिठुरता हुआ उन्हें चराने के लिए बंजर डाँडों में दिन-भर भटकता रहता है !"

बारह–

"तू उदास-उदास क्यों रहती है....?" एक दिन खुशाल ने पूछा तो गोमती कोई उत्तर न दे सकी।

"यहाँ तुझे कोई दुख-तखलीफ ?"

"न्नाँ।"

"मँझली और बड़ी कुछ कहती हैं ?"

"न्नाँ।"

"तो मुझसे कोई शिकायत ?"

"यह कैसे समझ लिया तुमने ?"

"फिर क्या बात है ? कुछ बोल भी न !" तुनककर खुशाल ने कहा तो गोमती प्रत्युत्तर में रो पड़ी और भागकर दूसरे कमरे में चली गयी।

उस रात खुशाल को बहुत प्रसन्न देखकर, आग्रह के साथ, किसी अन्तरंग क्षण में पूछा उसने, "एक बात कहूँ—?"

"हाँ, हाँ !"

"गलत अर्थ तो नहीं लगाओगे ?"

उसने सिर हिला दिया, "नहीं।"

"....क्या कुन्नू को यहाँ नहीं ला सकते....? मेरा मन लग जायेगा और यहीं हमारा कुछ काम भी कर देगा।. भैंस को ही चराया करेगा बंजर खेतों में !"

खुशाल को इस तरह के प्रश्न की इस समय आशा न थी। देर तक ठगा-सा सोचता रहा, फिर गोमती की ओर देखता हुआ बोला, "यह कैसे हो सकेगा ? उसका यहाँ आना क्या अच्छा लगेगा ? तुम्हारे और मेरे बीच कोई और हो—इसे मैं सह नहीं पाऊँगा। दूसरी बात यह है कि घड़ी भरते समय कलिया ने कागज में लिखवा लिया था कि बच्चा बाप के ही साथ रहेगा। तू ही बता, उसे अब यहाँ किस तरह ला सकते हैं ?"

"....।"

"तू नहीं जानती। यदि मैं उसे लाने के लिए 'हाँ' भी कर दूँ, घड़ी के कागज में भी कुछ लिखा न हो, तब भी क्या तू सोचती है कि कलिया उसे आने देगा ? फिर उस चण्डाल की चाकरी कौन करेगा ? खोड़ा साले की मैं रग-रग पहचानता हूँ....।"

"........"

उसका करुण चेहरा देखकर खुशाल का मन पसीज उठा। उसे प्यार करता हुआ बोला, "जो छूट गया, बीत गया, उसे लेकर अपना मन क्यों दुखाती है ? बता, उस पागल मुरदे से तुझे जीवन-भर क्या सुख मिला ?

जहाँ तक बच्चे का सवाल है, सिद्धनारसींग बाबा की कृपा हुई तो तेरी गोद यहीं भर जायेगी ! तुझे बच्चा ही चाहिए न !"

मन की व्यथा गोमती कैसे समझाये ? जिस बच्चे के लिए आत्मघात न कर पायी उस दिन, क्या अब उसी के लिए मर सकेगी ?

लगभग दो महीने बाद, अपने दोनों बच्चों को साथ लेकर, देवरानी के संग दुरलि फिर मैके गयी—अपने भाई के नमान पर तो गोमती ने आधी भेली गुड़, कुछ दाने भुने हुए च्यूड़े—भट् के, छोटी-सी थैली में सिलकर, चुपके से कुन्नू के लिए भिजवा दिये, "तेरी इजा ने भेजे हैं—कह देना !"

खुशाल की एक फटी क़मीज़ भी साथ भेजना न भूली—पिरमा के लिए। इतनी भयंकर सर्दी में वह क्या पहनता होगा ?

दुरलि पाँच-छह दिन में लौट आने का वादा कर गयी थी, पर पूरे महीने बाद लौटी।

गोमती पानी भरने नौला गयी तो वहीं सहसा उससे भेंट हो पड़ी, "बड़ी देर लगा दी हो दुरु तुमने तो !" गोमती ने पूछा।

"बोज्यू, क्या करूँ ? वहाँ जाते ही छोटा भव्वा बीमार हो गया था....।"

"अब कैसा है ?"

"कुछ समझ नहीं आ रहा ! गंगतुवा कहता था कि मधलि काकी का पिरेत लगा है। उसे पूज दो। इस सोलह गते को एक बकरी चढ़ा देंगे, कैल-बकरिया देवता के थान में।"

"कुन्नू मिला था ?" कुछ रुककर पूछा गोमती ने।

"हँ-हँ, बोज्यू, मिला क्यों नहीं ? रोज सुबह बकरियाँ चराने हमारे ही आँगन से होकर तो जाता था। तुम्हारे भेजे च्यूड़े-भट् दे दिये थे।"

"कुछ कह रहा था ?"

"कुछ नहीं। थैली देखते ही खूब खुश हो गया। वानर की तरह झपटकर, दोनों हाथों से खपा-खप गाल भरने लगा....।"

"और कुछ—"

"मैंने पूछा कि अपनी इजा की याद आती है, तो खाते-खाते आँखों में आँसु-कुँला-भर आये और थैली उठाकर भाग गया....।"

गोमती का चेहरा यह सुनते ही न जाने कैसा-कैसा हो आया था। कुछ क्षण ठगी-सी खड़ी रही, फिर जैसे सहसा कुछ याद आ पड़ा। उखड़े-उखड़े स्वर में बोली, "तन पर पहनने को कुछ था दुरु ? इस साल तो बड़ी हियालि है—जुलम का जाड़ा पड़ रहा है....!"

"अपने कुरते के ऊपर पिरम'दा का फटा कुरता टाँक रखा था। सर्दी से हाथ-पाँव फट गये थे। दरारों से लहू टपक रहा था....। खबीस ऐसे में भी उसे जंगल भेजते हैं—बालने के लिए ची-ड़ द्यार के छिलके लाने !"

पानी भरकर दुरलि चली गयी, पर गोमती ताँबे की गगरी पकड़े बैठी की बैठी रही।

तेरह-

जाड़ा शुरू हो गया था। बर्फ़ पड़ने के आसार स्पष्ट झलक रहे थे। ठण्डी हवा शरीर को बुरी तरह छीलने लगी थी। रात को खेतों में, खलिहानों में, पानी के नौलों में बर्फ़ के सफ़ेद पारदर्शी मोटे शीशे-से काँकर जमने लगे थे। ठण्डे से ठिठुरते, अधनंगे बच्चे शीशे की तरह तोड़कर काँकर ले आते और माँ-बाप की निगाहें बचाकर चूसने लगते थे। ठण्डे घने वनों में इतना सफ़ेद गहरा पाला पड़ने लगा था कि हिम का सन्देह होने लगता। अँधियारी घाटियों, घने वनों में नंगे पाँव चलना कठिन हो गया था। थोड़ी ही देर में हाथों-पाँवों का रंग नीला पड़ जाता और वे सुन्न होने लगते—एकदम निष्प्राण !

घर में जलाने के लिए बच्चे बोरियों में भर-भरकर, चीड़ के सूखे

फल यानी चीड़ की बकरियाँ बटोरने लगे थे। बस्ती की बस्तियाँ खाली हो गयी थीं। कुछ दिन शीत से बचने—घाम तापने तथा पेट-भर भात खाने का जुगाड़ करने के लिए लोग बाल-बच्चों, गाय-डंगरों और जरूरी माल-असबाब के साथ पैदल तराई-भाभर की ओर निकल पड़े थे—क़ाफ़िलों की शक्ल में।

पण्डत बुधानन्द के साथ डोटी-नेपाल जाने की योजना खुशाल बना ही रहा था कि पता चला—खियाली-बिरगुल के घने, भिसाले वनों से घिरे डाँडे को पार करते समय पण्डत को भालू ने पकड़ लिया था। पानी पीने के लिए पण्डत झुके ही थे कि काफल के पेड़ों के पीछे से गोंओं-गोंओं करता हुआ दानवाकार काला भालू आ टपका। पण्डत गरदन ऊपर उठायें उससे पहले ही भालू ने उन्हें अपनी बाँहों में, झप्पी मारकर जकड़ लिया था। देर तक मुठभेड़ होती रही। अन्त में मरते हुए पण्डत को कुछ न सूझा तो एक बड़ा-सा पत्थर उठाकर रीछ के सिर पर धम्म से दे मारा! सुई-जैसे नुकीले, लम्बे-लम्बे काले बाल फटकारता हुआ रीछ मुड़ा और देवदार के वनों की ओर लुढ़कता हुआ ओझल हो गया।

पर तब तक पण्डत बुरी तरह लहू-लुहान हो गये थे। भालू ने उनके हाथों-पाँवों के अलावा मुँह भी बुरी तरह पपोड़ दिया था।

पण्डत मरते-जीते, गिरते-पड़ते बिरगुल गाँव पहुँचे तो रात हो गयी थी। लोगों ने बचने के आसार न देखकर रात को ही डाँडी पर लादकर मायावती के अस्पताल में दाखिल करा दिया था।

कहीं मर-मरा पड़ा पण्डत तो मेरे 'तिजारथ' का क्या होगा? खुशाल परेशान हो उठा। फिर से रोटी के लाले पड़ जायेंगे। बैलों की जोड़ी बिक जायेगी। खुशालराम शिल्पकार से वह फिर खुशिया ल्वार हो जायेगा। पण्डत को मौत के मुँह से किसी तरह बचाकर लाना ही होगा—यह सोचकर वह उसी दिन शाम मायावती के लिए निकल पड़ा—सेवा-टहल के लिए। पण्डत की बदौलत उसने बड़ा सुख पाया था। इसलिए इस दुख की घड़ी में भी साथ निभाने से पीछे नहीं हटना चाहता था।

उन बेचारों को दुख दे रहा है ! लाम में से देविया के कुछ रुपये आये थे—आखिरी हिसाव-किताव के। सुना है यह खवीस उन्हें भी खा गया है....। पिछले महीने छब्बीस गते को पटवारी ज्यू गाँव आये थे। कलिया को खूब खरी-खोटी सुना गये थे। लोग कहते हैं कि मरने से पहले देविया ने सरकार को कागज लिखा था कि मेरे परिवार के लोगों को घर में वहुत सताया जा रहा है। मैं लाम पर हूँ, वहाँ उन्की रच्छा करनेवाला कोई नहीं है। यदि मैं लड़ाई के 'फरण्ट' पर मारा गया तो उन्का क्या होगा ?"

कहते-कहते खिमु'का अटक-से आये। रीती निगाहों से कुछ खोजने लगे, "हमारा देविया आज जिन्दा होता तो कलिया कल्चूँड़ की यों न वन आती ! देविया तो सुना जाते-जाते पोखरी के गुमानसिंह दुकानदार से कह गया था कि कलिय'का ने अब वच्चों पर हाथ उठाया तो एक-एक कर सबको गोली से भून दूँगा, फिर चाहे फाँसी हो जाये....! वही अभागा चला गया तो अब क्या करें ? कलिया को अब किसी की डर-परवा नहीं। उसका ढण्ट—तेजुवा गाँव में 'पधान' वना, जिसे चाहे सरेआम पीट लेता है। पंच-सरपंच सव उसकी मुट्ठी में हैं....। जंगल में कच्ची वनाकर सवको पिलाता है। पूरा इलाका इन वदमासों ने भरस्ट कर दिया है हो, क्या करें ?"

नन्हे-से, नाटे-से, दुवले-पतले खिमु'का कहते-कहते आवेश में आ गये, "परसों इन्होंने हमारी हरलि पर हाथ उठाया। घर में उस दिन लछिया नहीं था, नहीं तो खून-खच्चर हो जाता !"

गरदन झुकाये गोमती उसी तरह खड़ी सुनती रही।

"वोज्यू, तुम लै वैठ न !" दुरलि ने कहा, तव भी वह उसी तरह पलकें झुकाये खड़ी रही।

"व्वारी," गोमती वहू को सम्वोधित कर खिमु'का ने कहा, "मैंने तुझे इसलिए वुलाया है कि कुनुवाँ विचारे को तू अपने ही पास यहाँ वुला ले ! नहीं तो वाप की जैसी गत उसकी भी हो जायेगी। उसे कुत्ते की जूठी-पीठी रोटियाँ देते हैं, वह भी भर पेट नहीं। हाड़ ही हाड़ रह गये हैं विचारे के !

झेल हो जायेगी !" चेहरे की प्रतिक्रिया जानने के लिए, गोमती ने टटोलती निगाहों से उसकी ओर देखा।

इस समय, इस अप्रत्याशित, अप्रिय प्रश्न को सुनकर खुशाल चौंका।

"कलिया बदमास को झेल हो या फाँसी तुझे क्या ?" भड़ककर वह बोला, "तू उनके लिए बेकार में अपने परान क्यों सुखा रही है ? हजार दफे कह चुका हूँ कि तू वहाँ की बातें न सोच, न सोच ! पर तेरी अकल पर न जाने क्या पत्थर पड़ गया है ? जिस दिन तू यहाँ आ गयी थीं, उसी दिन तेरे लिए कलिया, पिरमा, कुनुवाँ—सब साले मर गये। फिर अब उनका जिकर क्यों करती है ? मेरा मन खट्टा हो जाता है !"

गोमती सहमकर चुप हो गयी।

वह सोचती थी कि खुशाल की कुछ जान-पहचान है। पटवारी-पतरौल भी इसकी सुनते हैं। अगर यह काग़ज़-पत्तर लिखवा दे तो कलिया और तेजुवा को उनके पापों की सजा मिल जायेगी।

पर ऐसा उत्तर सुनकर, हताश-सी गोमती मुँह खोले देखती रही।

मन के चैन के अलावा यहाँ सब कुछ था, उसके पास। खुशाल भी कोई कमी न होने दे रहा था—किसी भी तरह की। इधर-उधर से कुछ उधार लेकर भी थोड़े-बहुत गहने-पत्ते बनवा दिये थे। तीन-चार थान के कपड़े थे। खाने-पीने की कोई कमी नहीं। फिर भी कभी-कभी उसे लगता—इसी की उसे इच्छा होती तो यह किसी के भी घर बैठकर मिल जाता। देह के बदले दो रोटियाँ कहाँ नहीं प्राप्त होतीं ? पर यह उसने कब चाहा था ?

एक अजीब-सी विरक्ति की भावना उसके मन में भर गयी। उसे लगने लगा—शायद यहाँ भी त्राण नहीं !

लोहाघाट में रिखेस्वर के पास, फूलडोल का मेला था। गाँव के वहुत लोग जा रहे थे। खुशाल ने गोमती से कहा तो वह टाल गयी, "मेरा न नहीं !"

"तू तो निरी पगली है," खुशाल ने कहा, "तेरे लिए एकाध कपड़ा-त्ता खरीद देंगे। भरपेट दूव-जलेवी खायेगी। घर में अपने खाने के लिए गोला-मिसरी ले आयेगी। तेरे खाने-पीने के दिन तो अब शुरू हो रहे हैं—चल न !" खुशाल ज़ोर से हँस पड़ा।

न चाहते हुए भी गोमती को जाना पड़ रहा था। कलकोट की तरफ़ से कुछ और रिश्तेदार भी मेले में आनेवाले थे। खुशाल चाहता था कि खूब बन-ठनकर जायेगी तो इज़्ज़त बढ़ेगी। भाई-विरादरी में भी उसकी समृद्धि की कुछ चर्चा होगी।

यही सव सोचकर खुशाल ने अच्छे-अच्छे रंग-विरंगे कपड़े, जो टनकपुर-मण्डी से खरीदकर लाया था—उसे पहनने का आदेश दिया। पाँवों पर झाँवर, हाथों पर चाँदी की पौंचियाँ ! गले पर ढेर सारी मालाएँ !

अपने ही सौन्दर्य का भार गोमती उठा न पा रही थी।

मेले में जाकर खुशाल ने खुले हाथ से खर्च किया। गोमती के लिए फुन्दे खरीदे, चूड़ियाँ खरीदीं, माथे पर लगाने के लिए वड़ी-वड़ी लाल विन्दियाँ ख़रीदीं। चटक-मटक रेशमी रूमाल !

'तिजारथ' का कुछ पैसा अभी शेष था शायद, इसीलिए दोनों हाथों से लुटा रहा था।

गोमती के लिए इतनी सारी वस्तुएँ ख़रीदने पर भी उसका मन अघा न रहा था। शाम को घर जाने से पहले लिफ़ाफ़े-भर मिठाई और वाँध लाया।

वस-अड्डे के पास गाँव की अन्य औरतों के साथ उसे विठलाकर, किसी ज़रूरी काम से वह ऊपर पटवारी के डेरे में चला गया। मेले से लौटनेवालों की भीड़ लगी थी। समस्या यह थी कि खेतीखान तक केवल एक वस जायेगी तो इतने यात्री उसमें कैसे समा सकेंगे ?

के पास सामान की बड़ी पोटली छोड़ गयी।

सड़क के नीचे, किंचित् ढलान पर थी हौलात। ऊपर से ही बड़े-बड़े सीखचे साफ़ दिखलाई दे रहे थे। सड़क कच्ची थी। गीली, चिकनी मिट्टी पर पाँव फिसलने का खतरा था। इसलिए बच-बचकर, सँभल-सँभलकर नीचे उतरी। लोहे की ऊँची-ऊँची छड़ों से घिरी अँधियारी कोठरी में, टटोलती व्यग्र दृष्टि से कुछ खोजती रही।

एक छाया-सी हटी तभी।

नदी की तरफ़वाले दरवाज़े की ओर पीठ किये, ठोढ़ी को घुटनों से मिलाये, जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों में लिपटा पिरमा टुकुर-टुकुर बाहर झाँक रहा था—भावशून्य दृष्टि से। हलकी-हलकी पीली धूप का छोटा-सा चकत्ता, लोहे की छड़ों से कट-कटकर उसके पाँवों के पास बिखरा पड़ा था।

सूखा शरीर! बुझी हुई आँखें! झुकी कमर!

दोनों हाथों से लोहे की ठण्डी छड़ें पकड़कर गोमती सामने बैठे पंजर को देखती रही।

दाहिने हाथ की दो अँगुलियों के बीच बुझी बीड़ी की ठण्ठी दबी पड़ी थी। सामने खड़ी गोमती की ओर देखकर भी लग नहीं रहा था कि कहीं देख रहा है।

सजल नेत्रों से गोमती उसकी ओर न जाने कब तक निर्निमेष ताकती रही।

—कह क्यों नहीं देते कि अपराध तुमने नहीं किया, नहीं किया! गोमती गला फाड़-फाड़कर कहना चाहती थी, पर शब्द गले पर ही गोला बनकर अटक गये।

"ओ बोज्यू, मोटर आ गयी है हो! चलना नहीं!" हरलि ने ऊपर से आवाज़ लगायी तो गोमती की तन्द्रा टूटी। आँगड़ी की जेब में गट्टा-मिसरी की एक पुड़िया थी—छड़ों के बीच हाथ छिरकाकर सामने फेंक गयी। जेब से कुछ छपे कागज-पत्तर और कुछ टूटी रेजगारी भी बिखेर गयी।

—बीड़ी-तमाखू के काम आयेंगे कभी !
पर पिरमा ने उन्हें फ़र्श पर से उठाया नहीं। बिखरे सामान की ओर
ाने किस भाव से, उसी तरह बैठा ताकता रहा !

□

"कहाँ चली गयी थी ?" बस का टिकट थामे खुशाल खड़ा था।

"यहीं पास ही तो—"

"अरे, तू रो क्यों रही है ?" आश्चर्य से खुशाल ने पूछा तो गोमती यों ही हँस पड़ी, "रो कहाँ रही हूँ ? मैं तो हँस रही हूँ....।" उससे सट-कर खड़ी हो गयी वह।

अन्तर की इतनी विरक्ति के बावजूद गोमती ने खुशाल के प्रति अपने कर्तव्य में कभी कोई कमी न की। जो वह चाहता, चुपचाप कर देती। मुँह खोलकर कभी किसी प्रश्न का उत्तर न दिया, सिर झुकाकर सब स्वीकार करती रही।

खुशाल के साथ उसकी 'जीने-मरने' की स्थिति से दोनों सौतें परेशान थीं। अपने को हर तरह से उपेक्षित समझ रही थीं। उसी से दिन का साथ, उसी से रात का। घर की ताली-कुंजी भी उसी के हाथ !

बकरियों के बाड़े के लिए चीड़ के तख्ते ढोती बड़ी एक दिन फनक-कर बोली, "हँ हो, तुम्को तो चाम प्यारा है, काम नहीं ! हम खेतों प
हाड़ गलाती रहें और वह घर में राज रचाती, पाँव हिला-हिलाक
खाये ? इसी पर लगे हैं न रसभरे बड़े-बड़े गुच्छे !"

"घर में रोटी-भात बनाने के लिए कोई तो रहेगी ही।"

"हाँ, हाँ, यही रहेगी ! यह नहीं रहेगी तो अपने पुराने ख
लाड़ कैसे लड़ायेगी ? तुमारे कपड़े चुरा-चुराकर उसे कैसे भेजेगी ?
बच्चे के लिए गुड़ की भेलियाँ और च्यूड़े-भट् के थैले बाँध-बाँध
सरकायेगी ? और तुम, तुम इसे इसके पुराने खसम से मिलाने
कैसे ले जाओगे ? मैं झूठ बोल रही हूँ तो दुरलि से पूछ लो !

बुला लो ! फूलडोल के मेले में यह उससे मिलने हीलात गयी थी ! सारा दिन उसी के लिए रोती रहती है राँड़ ! इतनी ही ज्योंनी-मरनी है तो अपना मुँह वहीं काला क्यों नहीं करती ? डाकिन, हमारे घर का भताभंग करने आयी है....!"

खुशाल उस समय चुप हो गया, पर बाद में और लोगों ने भी ज़िक्र किया तो उसके मन में नाना प्रकार के नाग लोटने लगे। इतना सब करने के बाद यह हाल ! उसी दिन राँड़ नदी में छाल मारकर मर जाती तो न इतनी बदनामी होती और न घड़ी भरने का खरचा ही !

सारा दिन खुशाल परेशान रहा और रात को लोटा-भर कच्ची गटक-कर मुरदे की तरह सो गया।

चौके बरतन के काम से निबटकर गोमती कमरे में पहुँची तो वहाँ निपट अँधियारा लगा। तेल का लम्फू भी आज जला न था। अँगीठी से छिलका जलाकर उसने कमरे में प्रकाश किया और खुशाल को जगाकर दूध का गरम गिलास उसकी ओर बढ़ाया, "हैं हो, तुम तो आज साँझ ही सो गये ? कहीं जर-बुखार तो नहीं !"

खुशाल ने कोई उत्तर न दिया, चुपचाप गिलास थाम लिया। अपने ठण्डे हाथ लोहे के गरम गिलास के चारों ओर लपेटकर गरम करता हुआ गोमती की ओर देखता रहा—

आँखें लाल थीं खुशाल की, चेहरा स्याह।

गोमती को वक्र-दृष्टि से ताकता हुआ बोला, "तुझे बेटे की बड़ी याद आती है ? खूब नराई लगती है न ?"

गोमती कोई उत्तर न देकर उसकी ओर देखती रही—ऐसा प्रश्न खुशाल ने इससे पहले कभी भी पूछा न था। फिर आज ही क्यों पूछ रहा है ?

"मैं कुछ पूछ रहा हूँ ?—बता न !"

"हैं, कभी-कभी !" उसने सिर हिलाया।

"पिरमुआँ की भी ?"

"यहाँ से जाने की वात तू सोच कैसे सकती है वता ?" अन्धकार में ही वह गरजा, "घड़ी मेरे नाम की भरी गयी ! चार सौ रुपये करज लेकर मैंने चुकाये ! पहले अपने बाप के रुपये गिन जाना, फिर देहरी के बाहर पाँव धरना। देखता हूँ, ऐसे ही तू किस प्रकार पिरमुआँ साले के घर फिर वैठती है ? वहीं से घसीटकर लाऊँगा। राँड़, अब किसी नये खसम की खोज में होगी ! तेरी चालाकी मैं सब जानता हूँ...!"

गोमती सन्न रह गयी ! उसके बिछौने पर फिर दुबारा न गयी। गठरी की तरह एक कोने में ठिठुरती पड़ी रही।

उसे याद आया—

उसके साथ ऐसा ही तब भी हुआ था, जब उसकी पहली शादी हुई थी चालसी पट्टी में, पिरमा से शादी से पहले। बारह वरस की उमर थी तब, जब विवाह के बाद पहली बार ससुराल गयी थी।

उसके दूध के दाँत भी अभी टूटे न थे। दीन-दुनिया की कुछ भी खबर न थी। विवाह क्यों होता है ? क्या होता है, उसे पता न था। उसे केवल अच्छे कपड़े पहनने की ही खुशी थी।

रात को खाने-पीने का काम समाप्त कर उसकी विधवा जेठानी उसका हाथ पकड़कर भीतरवाले कमरे में छोड़ आयी और स्वयं बाहर आकर, बाहर से कुण्डा चढ़ा दिया।

सास-ससुर, ननद-देवर कोई भी न था इस परिवार में। दूर के रिश्ते की इस निःसन्तान भावज के साथ पति तीन साल से रह रहा था। रिश्तेदारों के दबाव में आकर उसने कहीं अब जाकर यह विवाह किया था, अन्यथा कभी न करता।

अँधेरे कमरे में अकेले पहले तो उसे डर लगा, फिर किसी के चलने की आहट आयी। उसे समझते देर न लगी कि पति के पाँवों की ही आहट है !

उसका हाथ पकड़कर वह अन्धकार में ही उसे अपने बिछौने पर ले गया। पति-पत्नी के सम्बन्ध क्या होते हैं, उस अबोध को क्या पता ? वह

म गरम बिछौने में घुस गयी। दिन-भर की थकी थी। पलकें नींद
झल! उसे झपकी-सो आने लगी, पर वह उससे लाड़ जताता हुआ
-जगह से टटोल रहा था। उसने आवेश में उसे बाँहों में कसकर
से भींचा तो उसका दम घुटने लगा। कुछ सीमा तक वह सारी
तियाँ सहती रही—सहती चली गयी, पर ज्यों ही पति के प्रेम की
ोमा कुछ और बढ़ी, नन्ही गोमती घबराकर पसीने-पसीने हो गयी।
पीड़ा असह्य होते ही ज़ोर से चीखी!

ज्यों-ज्यों पति पाशविक-बल का प्रदर्शन करता चला गया, उसकी
चीखें बढ़ती चली गयीं।

तभी पता नहीं पति को क्यों इतनी झुँझलाहट हुई कि आवेश में
उसकी नंगी पीठ पर एक मुटका जमाया और कीड़े की तरह पकड़कर दूर
छिटक दिया।

अभी वह सिसकती-रोती, गुड़ी-मुड़ी-सी कोने पर पड़ी ही थी कि
खटाक् से बाहर का कुण्डा खटका। अँधियारे में ही जेठानी धमकती हुई
भीतर चली आयी।

"हँ हो देवर ज्यू, यह अकेले तुमारे वस की नहीं हो। इसे तो मैं ठीक
करूँगी मैं!" कहती हुई वह उसे फिर उसके पति के बिछौने पर घसीट
लायी। पति की सहायता के लिए उसने अपने दोनों मज़बूत पाँवों से
गोमती के घुटने दबाये और ऐंठकर कलाइयाँ पकड़ लीं, "अब कर चूँ...!

पति ने अपनी हथेली से उसका मुँह इतनी ज़ोर से दबाया कि
चीख भी न पा रही थी अब!

कुछ देर बाद पसीने से नहायी अचेत-सी एक ओर लुढ़क प
विवश भाव से।

असह्य पीड़ा से वह कराह रही थी। सारा शरीर पत्ते की त
रहा था थर-थर! जेठानी अब उसे खींचकर बाहर ले गयी
भीतर घुसकर फटाक्-से किवाड़ बन्द कर दिये।

तब सुबह तक ठण्ड से ठिठुरती हुई अकेली पड़ी रही। त

पहली बार उसके पति ने उसके साथ बलात्कार किया था !

अपने को ऐसी ही उपेक्षिता उसने तब भी महसूस किया था, जैसा कि आज।

आज भी कुछ-कुछ वैसा ही हो रहा था—किसी दूसरे ढंग से। पति ने उसे घसीटकर बाहर फेंक दिया तो दोनों सौतें इकट्ठी ही झट् भीतर चली गयी थीं। भीतर से धड़ाम्-से किवाड़ बन्द कर दिये थे...।

सुबह उसका चेहरा बहुत उतरा-उतरा था। पानी भरने से लौटी तो पति की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर दोनों सौतों ने उसके शरीर से गहने उतार लिये और घर की ताली-कुंजी भी झटक ली।

फिर जोगन की जोगन बन गयी गोमती। दिन-रात बाहर का काम करती, पानी भरती, जंगल से घास-पात लाती, जलाने के लिए लकड़ियाँ काटती। गाय-डंगरों और बकरियों का बाड़ा साफ़ करती और दालान में फटा दन बिछाकर पड़ी रहती।

पन्द्रह–

"तेरी इजा बहुत बीमार है। अन्तिम बार मुँह देखने के लिए तुझे बुलाया है!" अदालत के काम से चम्पावत जाता हुआ एक घोड़िया एक दिन कह गया था, गोमती से।

इतनी बड़ी दुनिया में एक ही ठौर थी, जहाँ वह रात के अँधेरे, दिन के उजेले में निधड़क जा सकती थी। पिता नाम का जीव कैसा होता है, उसे पता न था। पिता का प्यार ही नहीं पहचाना था उसने कभी। पतियों से यह सुख मिला ? अब केवल माँ ही थी अकेली, जिसकी गोदी में, इतनी बड़ी होने के बावजूद, आज भी सिर लुकाकर रो लेती थी। मन की व्यथा जिससे कह सकती थी !

उसकी नशीली, नीली, मदभरी आँखों के नीचे अजीब-सी रेखाएँ खिच गयी थीं।

"गोमती, तूने गलत समझा मुझको !"

"मेरी क्या औकाद, तुम्को गलत समझने की ?" उसी स्वर में गोमती वोली, "इत्ती वड़ी सजा तुमने मुझे दी। इससे अधिक और क्या कर सकते हो अव ? खुद पीटने के वाद भी पेट न अघाया तो सौतों से पिटवाया....। मैं चाहती तो किसी के भी घर वैठकर कुछ भी हासिल कर सकती थी, पर मैंने ऐसा कभी चाहा ही नहीं। टूटी-फूटी एक छोटी-सी दुनिया है मेरी, उसी में भी लोग जीने नहीं देते। कुतिया की तरह दुर-दुर करते रहते हैं...।" गोमती की असहाय आखों में आँसू उमड़ आये।

खुशाल ने उठकर उसे वाँहों में वाँध लिया। गोमी, तूने गल्त समझा। मैं तो केवल यही चाहता था कि तू अव हौरों के वारे में न सोच। इसीलिए मैंने....।"

"माँ अपने वेटे के वारे में न सोचे ? क्या मैं साँपिन हूँ ? अपनी कोख-जाई सन्तान को भूल सकती हूँ ? सड़क की औरत समझते हो न, जिसे वीस वीसी रुपै में घड़ी भरकर तुमने अपने घर विठा लिया ?" आवेश में गोमती के नथुने फड़कने लगे।

गोमती का यह रूप कभी देखा न था खुशाल ने ! इसलिए और अधिक चकित था। उसका तमतमाया चेहरा कितना सुन्दर लग रहा था !

उस रात खुशाल उसे खींचकर फिर अपने कमरे में ले गया, पर वह पत्थर की तरह निष्प्राण पड़ी रही। शरीर में कहीं कोई हरकत नहीं।

"मेरा मन ही उचट गया है अव ! मुझे छोड़ दो ! कुछ भी तो अच्छा नहीं लगता !"

पर यों ही कैसे छोड़ सकता था खुशाल ! उसकी वस्त्रविहीन देह को देर तक सहलाता रहा। इस भुवनमोहिनी के विना वह जी सकता है—उसने कभी कल्पना भी न की थी।

"तेरी इजा वीमार है तो सोद कर आ।....हाँ, लधौंन न जाना।

—कुन्नू को कलिया रोज धमकाता होगा ! फिरवा कुत्ते की पोथि की तरह कान पकड़कर घसीटता होगा !

—शरीर पर अब चीथड़े भी शेष न होंगे !.इस सर्दी में अभागा नंगा ठिठुरता होगा !

—बाप के झेल जाने के बाद उसे कैसा-कैसा लगता होगा ? एकदम अकेला ! असहाय !

—इतना सन्ताप ! इतनी सजा ! माथा पकड़कर गोमती पगडण्डी के किनारे बैठ गयी ।

अँधेरा घिर आया तो उसके लड़खड़ाते पाँव नरसिंग डाँडा की तरफ़ नहीं, कहीं और बढ़ रहे थे—किसी दूसरी दिशा में !

सोलह—

तीन-चार दिन तक गोमती न लौटी तो खुशाल को सहज ही आश्चर्य हुआ । गोमती के मैके आदमी भेजा तो पता चला कि वह तो उसी दिन लौट गयी थी—साँझ से पहले ।

लवाँन भी पहुँची नहीं ।

तो फिर ? खुशाल हाथ मलता हुआ क्रोध से उबल रहा था । उसे लग रहा था कि यदि घर में उसे यों प्रताड़ित न किया जाता तो सम्भवतः कहीं भागती नहीं । इसका दोष वह अपनी दोनों पत्नियों के माथे मढ़ रहा था, जिन्होंने उसके तन पर से गहने-पत्ते ही नहीं उतारे, बल्कि भकार-सिन्दूक की ताली-कुंजी भी जबरदस्ती हथिया ली थी । आँख के तिनके की तरह बाहर निकालकर उसे दालान में डाल दिया था ।

कलिय'का और तेजराम हँस रहे थे । जब भी उनकी बात होती, जो भी जिक्र छेड़ता, उसी को सम्बोधित कर कहते, "हँ ला, हम तो पहले

ताकि फिर लवाँन जा सके। छोटे-से छौने तथा रुग्ण पति की याद रह-रहकर आती तो वह विह्वल हो उठती।

—करम में मरना ही लिखा है तो तीनों जनें साथ मरेंगे—एक साथ !

दो खुटिया जानवरों की मांद में उन्हें छोड़कर आना, किसी भी क़ीमत पर स्वीकार न था उसे।

बहुत-सी ग़रीब औरतें अपने परिवार के साथ, तराई-भाभर में, इसी तरह मेहनत-मजूरी कर एक गास भात का बन्दोबस्त करती थीं। वह भी उन्हीं के झुण्ड में शामिल हो गयी।

कुछ दिन सैंनापानी, दोगाड़ी के गोठों में भटकी, फिर कुछ रिश्तेदारों के साथ खटीमा रही। तराई के सघन वन काटकर नये-नये फ़ार्म बन रहे थे। जंगलों के सफ़ाई अभियान के लिए कम पैसों पर काम करनेवाले मजदूरों की जरूरत थी। गोमती भी सबके साथ मिलकर, दिन-रात कटे पेड़ों की जड़ें निकालती। गड्ढों पर मिट्टी डालकर समतल करती, ताकि ट्रैक्टर चलाने में असुविधा न हो।

कसी-कुदाली चलाते-चलाते हाथों पर छाले पड़ गये थे। आँखों के नीचे काली-काली झाइयाँ! परन्तु गोमती ने न दिन देखा न रात। पागलों की तरह निरन्तर काम पर जुटी रही।

दो-तीन महीने की कड़ी मेहनत के बाद उसके पास अब तक केवल चार बीसी रुपये जुड़ पाये थे! उसे तो जरूरत थी—बीस बीसी की!

बीस बीसी तक पहुँच पाना, उसके लिए पंचचूली की चोटी लाँघने के समान दुष्कर हो रहा था। वह परेशान थी, बेहद दुखी!

"बड़ी मेहनताऊ है, जे मजदूरन!" लाला तिरपन लाल अपना पोला मुँह फुलाते हुए कहते, "जे का गजब का काम करत है! बड़े-बड़े पेड़न को खटाखट कुल्हाड़ी चलाय के ढेर कर देत है!"

तिरपन लाल की खटीमा-मण्डी में आटे की चक्की थी, जिसे लड़के सँभालते थे। जंगल में इमारती लकड़ी काटने का ठेका भी कभी-कभी

बाद तो जंगलों में इमारती लकड़ी चीरनेवाले चिरान भी कन्धों पर आरे लटकाये, गुड़-भेली, कपड़ा-लत्ता, चना-चावल खरीदकर, बसों में लद-लद-कर भागने लगे।

जाड़ों में जो क़ाफ़ले तराई की ओर आने के लिए आतुर थे, उन्हें अब पहाड़ों में भागने की उतावली थी।

लाला तिरपन लाल ने मज़दूरों का हिसाब कर दिया था। रुपये चुकाते-चुकाते भी कहना न भूले, "सुन्ती है तू ! बैंनीराम बतलाता था कि घर में कोई नहीं है तेरा ! यहीं काम-धाम क्यों नहीं कर्ती ? जब तलक तिरपन लाल है, मऊज करेगी, मऊज !"

गोमती ने आँखें तरेरकर देखा, "मेरे घर-परिवार में सब हैं लाला, सब ! उनके ही लिए मैं हिया हाड़ तोड़ती रही। बिन्नाम तो ऐसे ही कहता है, तेरे को खुश करने के वास्ते। मैं ऐसी-वैसी नहीं ! मेरे को गलत समझ रहा है !"

अपने मोटे-मोटे भद्दे होंठ चबाते हुए लाला फिर हँसे, "अपन ने तेरे कू क्या बोला ? बता ! काम कर्ने से कोई काम गलत हो जाता है....?"

सोर—पिथौरागढ़ के तरफ़ के किसी अवकाश प्राप्त वृद्ध सैनिक का ग़रीब परिवार गत वर्ष गरमियों में लाला के फ़ार्म में रहा था। प्रतिमास राशन-पानी के अलावा कुछ रुपये भी उसे दे दिया करते थे लाला। औरत-मरद, बच्चे-बूढ़े बरसा-घाम में दिन-रात फ़ार्म में जुटे रहते। इस वर्ष उनके बनवसा चले जाने से लाला परेशान थे। उनकी मेंड़ के पास एक और फ़ार्म था, किन्हीं सरदारजी का। उनके चौकीदार के भरोसे रहना कठिन था। बरसात में जंगली हाथियों के द्वारा फ़सल रौंदे जाने का खतरा भी निरन्तर बना रहता।

आदमियों की कमी हो, ऐसी बात न थी, पर लाला पैसों के मामले में अत्यधिक निपुण थे, धेला खरचते हुए प्राण निकल जाते थे। इन गरमियों के लिए एक बुढ़िया लाला ने तैयार कर ली थी, पहाड़ में जिसका कोई भी नाते-बेलेवाला शेप न था। अतः जब तक घट में परान

हैं, उसने अपनी घड़ी यहीं काटने का निश्चय कर लिया था। परन्तु रात को उसे कुछ दीखता न था, रतौंधी के कारण।

अपना हिसाव-किताव लेकर, परिवार के साथ सव लोग चोरगलिया के रास्ते पहाड़ जाने की तैयारी करने लगे। गोमती भी पोटली वांधकर चलने लगी।

चोरगलिया में रात विताकर, प्रातः तड़के पहाड़ की पहली चढ़ाई पार करनी थी। लोग खुश थे कि दो-तीन महीने घाम तापने, भात खाने के अलावा तेल-तमाखू का वन्दोवस्त भी हो गया था। वाल-वच्चों के लिए कपड़े-लत्ते का भी।

आसमान में तारे विछे थे। हवा में उतनी गरमी न थी अव। पीपल के पेड़ के नीचे डेरा लगा रखा था। पास ही दूसरे पेड़ों के नीचे खूँटियां गाड़कर घोड़े, गाय, वैल, वकरियाँ वाँध रखी थीं। दो पत्थरों के ऊपर पतीली धरकर कहीं दाल वुदवुदा रही थी, तो कहीं भात पक रहा था।

अपने हिस्से के दाल-चावल गोमती ने किसी को पकाने के लिए दे दिये थे, परन्तु उससे खाना खाया न गया। सिर दर्द का वहाना वनाकर वह सो गयी।

भोजन-पानी के पश्चात् दिन-भर के थके लोग धीरे-धीरे विछौनों पर गिर पड़े। पास ही जलती आग भी वुझ गयी, पर गोमती की आँखें खुली की खुली थीं। इत्ती मेहनत-मजूरी के वाद केवल कुछ ही रुपये जुड़ पाये थे अव तक ! पहाड़ पहुँचते ही खुशाल को पता लग ही जायेगा। दो-चार आदमी साथ लेकर, घसीटकर वह घर ले जायेगा और फिर वही नरक !....पिरमा हौलात के चक्कर लगाता रहेगा। कुनुवाँ दूसरों की भेड़-वकरियाँ चरायेगा और वह दूसरों के जूठन पर हमेशा पलती रहेगी। गिद्ध की तरह लोग उसे नोचते रहेंगे ! हे परमेसर, वह कराह उठी !

आगे चलने के लिए सुवह मुँह-अँधेरे ही सव तैयार होने लगे। गाय-डँगर रात की चौथी पहर से पहले ही रवाना हो गये थे। असवाव वाँध कर, हाथ-मुंह धोकर वैलों-घोड़ों पर सामान लादकर सव चलने लगे।

पशुओं के गले में घण्टियाँ खनखनाने लगीं। पहाड़ी, कच्चे दुर्गम रास्तों में ढेर सारी धूल उड़ने लगी।

सुबह-सुबह ठण्डे में जितना रास्ता तय हो जाये अच्छा है। धूप लगने पर पहाड़ियाँ पार करना कठिन हो जाता है।

सबकी देखा-देखी गोमती ने भी अपनी गठरी बाँधी, लेकिन पाँव आगे न उठ पा रहे थे। सबसे पीछे-पीछे चल रही थी—अकेली! पिछले कुछ दिनों से इस इलाक़े में जंगली खूनी हाथी का आतंक छाया हुआ था। इसलिए भीड़ की शक्ल में सब साथ-साथ चल रहे थे—घण्टियाँ, थालियाँ बजाते हुए। जरूरत पड़ने पर आग जलाने की भी व्यवस्था उन्होंने तैयार कर रखी थी।

दोपहर को अगले पड़ाव में भोजन के लिए सब रुके तो लोगों ने देखा क गोमती लापता है!

सत्रह—

"लाला, मुझे काम चाहिए!" गठरी नीचे रखकर गोमती ने पसीना पोंछा।

अपनी आदत के अनुसार लाला तिरपन लाल "हि-हि" हँसने लगे, "फारम ही तेरा है। काम-वाम की तुझे का जरूरत?"

"नहि, नहि लाला, तूने खेत में मजदूरी के वास्ते बोला था न!"

"हाँ, बाबा! अपन तो पैंले ही बोला न कि फारम तेरा है। हमकू पत्ता था—तू पलटकर जरूर आयेगी! तिरपन लाल के बाल धूप में तो सुफेद हुए नहीं। दुन्या देखी है। हँ हँ हँ—।"

थुलथुल चेहरा, अधखिचड़ी बाल—गोमती देखती रही।

"अच्छा, बोल, कित्ती मजदूरी लेगी? फारम में ही रहेगी ना—

बुढ़िया के साथ ?"

गोमती ने सिर हिलाया, "जित्ती ठीक समझे, लाला दे देना।" कुछ क्षण गोमती चुप रही, फिर कुछ सोचती हुई बोली, "बरस-भर तेरे खेत में कांम करूँगी, ठीक बरस-भर ! ठीक आज के ही दिन चली जाऊँगी। बोल, बीस बीसी रुपये देगा ?"

बीस रुपये की एक बीसी होती है, लाला जानते थे। इसलिए चट हिसाब लगाकर बोले, "जास्ती है !"

"हैं, लाला, मेरे को तो इत्ते ही चाहिए," तनिक दृढ़ता से गोमती ने कहा, "पूरे इत्ते, कमी-बेसी नहीं !"

लाला तिरपन लाल भूखी गिद्ध-दृष्टि से देखने लगे, "अपन कू खुश करेगी तो तेरे कू इत्ते भी दे देंगे। लेकिन, काम-वाम में कमी नहीं कर्नी है, समझी ना ! रात को लप-लप करता जंगली हाथी आयेगा, तो तेरे कू तुरत आग जलाकर उस्को भगाना पड़ेगा। और-और शोरगुल मचाना पड़ेगा खाली मूली में—समझी ना !"

सारी शर्तें गोमती ने सिर झुकाकर स्वीकार कर लीं।



धान की फ़सल तैयार हो गयी। रात को हाथी नहीं आये, पर लाला नियमित आते रहे। हाथी के आने में शोरगुल मचाना आवश्यक होता था, पर लाला के आने में मुँह पर हथेली धरकर चुपचाप सिसकते रहना पड़ता था। कभी-कभी गोमती सोचती—लाला के आने की अपेक्षा जंगली हाथी का आना शायद अधिक अच्छा रहता। एक ही बार में सारी यन्त्र-णाओं से मुक्ति मिल जाती !

तराई की भीषण गरमी गोमती ने कभी देखी न थी। झीनी झोपड़ी में जब दोपहर का सूरज ऊपर से आग उगलने लगता, तब वह लू के झोंकों के साथ झुलस-झुलसकर चीख उठती। तमाम शरीर पर दाने ही दाने ! लोटा-भर पानी एक साथ गटक जाती, तब भी प्यास बुझ न

गाती थी।

उसे तब घर के आँगन के उस पार चमचमाते धवल हिमशिखर याद आते। बाँज-बुराँज की शीतल छाया याद आती। चीड़-देवदार के पेड़ों की सुगन्धित हवा! छन-छन मन-मन करता काँठिनौली का बर्फ़ीला जल! पीते ही मरे आदमी के भी परान लौट आते।

उसकी प्यास तब और भड़क उठती।

घुटने-घुटने कीचड़ में सनी वह धान के हवा से गिरे पौधे सँभालती। हाथ-हाथ-भर लम्बी बाल देखकर, उस जनम-जनम की भूखी अभागी की भूख ही मिट जाती। पहाड़ों में दिन-रात मिट्टी कपोरने के पश्चात् भी दो-तीन मन धान, गेहूँ, मँडुवा-माँदरा सम्भव न था, पर यहाँ उलटे हाथ से जहाँ भी बीज बिखेरा, लहलहाती हरी-भरी फ़सल तैयार! आदमी डूब जाये—धान के ऐसे-ऐसे पौधे!

रात को मच्छर भिनभिनाते तो वह उठ बैठती। बाहर अँधेरे आँगन में आकर, दानव की तरह खड़े शीशम, शाल के वृक्षों को देखती रहती।

लाला ने अपने सुख के लिए एक मसहरी दे दी थी। गुदगुदैला कोमल बिस्तर तथा दो-तीन अच्छी-सी साड़ियाँ भी। पर गोमती उन्हें कभी पहनती न थी। लाला जब फटकारते तो कभी यों ही तन पर लपेट लेती। उन लाल-लाल साड़ियों से अपना बदन ढकते ही उसे लगता, जैसे आग की लपटें लपेट ली हों! सारा शरीर जलने-सा लगता!

□

बरसात के दिनों में पानी ही पानी! सारे खेत-खलिहान डूब जाते। गँदले पानी में खड़ी गोमती कितने ही टूटे हुए प्रतिबिम्ब बटोरने लगती—

पति को लेकर अब वह मैके चली जायेगी और वहीं किसी के खेतों में मेहनत-मजदूरी करेगी। तीन प्राणियों का पेट भरना क्या मुश्किल है? अभी दिन-रात वह खेतों पर काम कर सकती है, बिना विश्राम किये।

कौन जाने पिरमा ठीक हो ही जाये! इस बार दस्से के मेले में वह

उसे गौतोड़ा ज़रूर ले जायेगी। डँगरिया-देवता वहाँ नाचते हैं। उनकी सौंली लग गयी तो वह पहले की तरह काम करने लगेगा!

उनका भी एक घर होगा। कहीं किसी जंगल में बेकार पड़ी, बेनाप-बंजर ज़मीन पर खेती करेंगे। बकरियाँ पालेंगे। मण्डी से लोहा ख़रीदकर बरतन बनायेंगे!

सपनों की न जाने किस दुनिया में खो जाती गोमती!

"अए, गौंमती, का कर रई ऐ?" आँगन में जीप के रुकते ही लाला तिरपन लाल की आवाज़ से उसकी तन्द्रा टूटती।

"जैसी चोक्खो तू है, वैसी चोक्खी फसल भी हुई इस साल। तेरे कू धान के बोरे में तोल देंगे—सम्झी?"

गोमती हँस पड़ती, "मेरे को तोलकर क्या होगा लाला? तू अपने को तोल—खूब भारी पड़ेगा!"

"खूब भारी है न अपन? तू तो जान्ती है ना अपन वजन! बहुत भारी है न!" लाला तिरपन लाल अपनी गोल टोपी ठीक करते। सफ़ेद धोती का पल्ला सँभालते कि कहीं गँदले पानी के छींटे न पड़ जायें!

झक-झक सफ़ेद कपड़ों पर दाग़ लाला को सह्य न था, भले ही मन पर मनों स्याही हो!

□

ठण्डी बयार फिर बहने लगी। पहाड़ों की ऊँचाइयों से उतरकर लोग फिर तराई के मैदानों में 'ठिड्ढियों' की तरह बिछने लगे। घने वनों में हलचल शुरू हो गयी! पहली ही फ़सल अच्छी होने के कारण लाला खुश थे। चार-पाँच ट्रक ईंट गिरवाकर छप्पर पक्का करवा दिया था।

अपने रिश्तेदारों के फिर आ जाने से गोमती के बुझे चेहरे पर फिर रोशनी फिर आयी थी।

—खुशिया तुझे ढूँढ़ रहा था।

—खुशिया ने सारी जगहें छान मारीं। सुना है, खटीमा तक भी आया,

पर पता-पानी न मिलने के कारण ग्वालों के साथ वापस चला गया ।

—तुझे क्या हो गया गोमती ? गरमी से झुलसकर तू तो काली हो गयी !

गोमती ने कोई उत्तर न दिया ।

"लघौंन गयी थी कभी ?" साथ आयी एक रिश्तेदारन से पूछा, सन्नाटा तोड़ते हुए ।

"द, गयी क्यों नहीं ? वेनाप जमीन की मुकरट के सिलसिले में हम सब लोहाघाट गये थे, लघौंन से होकर । कुन्नुवाँ देखा था । तेरा जिक्र आते ही टुल-टुल रोने लगा । हमें क्या पता था कि तू इसी फारम में फिर लौट आयी है ? हमने तो सबसे कह दिया था कि तुझे जंगली हाथी ने कुचल दिया होगा ! तेरी तो किरिया भी हो गयी ! लघौंन के खिमुका ने पिण्ड-दान दिये....।"

गोमती अवाक् रह गयी ।

"खुशाल के घर से कोई कुसल-बात—!"

"सुना है, बड़ी सौत तो बरसात में, बाँज के पेड़ से गिरकर मर गयी थी । मँझली के पाँव भारी हो गये हैं । बकरियाँ बेचने का धन्धा अच्छा चल रहा है । उसने भी मान लिया है कि हाथी ने ही तुझे मार डाला होगा, नहीं तो साथ चलते दगड़े से छिटककर कहाँ चली जाती ?"

"हमारे घर के भीतर गयी थी न ! खाने-पीने के लिए राशन-पानी तो क्या होगा ? दूसरों के घर भीख माँगकर वे दिन काट रहे होंगे....!"

"हूँ हो, झूठ तो मैं बोलने से रही । घर के भीतर तो नहीं गयी । भाग-भाग में ही रहे, जल्दी में । हाँ, पिरमा जरूर मिल गया था, खेत से लौटता हुआ । पंख निकाली हुई घुघति चिड़िया-सा हो गया था । देखते ही कलेजे के व्याँरे हो जाते हैं—टुकड़े-टुकड़े ! कभी कितना खपसूरत था—पंजावियों-जैसा ! सत्यानासी कलिया ने उसकी कैसी गत बना दी ! बिना पानी के मरेगा, देख लेना खबीस ! ऐसा कुपचित ! हाय ! हाय !"

अठारह—

गोमती बरस-भर दिन गिनती रही थी। इस एक बरस के वनवास में उसने क्या-क्या नहीं झेला था? सारी नारकीय यातनाएँ, वह एक ही उम्मीद पर झेल रही थी, इसी एक दिन के लिए—

"बरस पूरा हो गया लाला, मेरा हिसाब कर दे!"

लाला तिरपन-लाल हँसने लगे, "बड़ी मूरख हो गौंमती तू। तेरे कू पक्का मकान बनवा रहा हूँ। पानी का नलका लगा रहा हूँ और तू पहाड़ जाने को रट लगाये है! वहाँ कूँन है तेरा बता? हमकू पता है, तेरे घर में सब मर गये!"

"नहीं, नहीं लाला!" गोमती ने लाला के होंठों पर अँगुलियाँ रख दीं, "ऐसी कुभाखा मत बोलना कभी! तेरे को मैंने पेस्तर कह दिया था— साल-भर काम करके चली जाऊँगी! मेरी मिहनत-मजदूरी चुका दे! मैं तुझसे और कुछ नहीं माँगती!"

"लाला तेरी तनखा बढ़ा देगा। तेरे कू अब काम कर्ने की जरूरत नहीं। तू यहाँ रह और खा! तेरी देख-रेख अपन करेगा। अपनी औरत के माफिक तेरे कू रखेगा!"

"नहीं-नहीं," गोमती चिल्ला पड़ी, "साल-भर तक तूने जो कहा, हमने किया। बता, कभी तेरे किसी काम को मना किया? तू आया, अपने यार-दोस्तों को भी लाया, पर हमने कभी कुछ कहा? अब मेरी तनखा दे दे लाला, नहीं तो मैं तेरे दरवाजे पर फाँसी लगा लूँगी, फिर मत कहना!"

गोमती ने लाला तिरपन लाल के पाँवों पर सिर टिका दिया, "गरीबी के कारण सब सहा लाला, नहीं तो हम ऐसे-वैसे नहीं....! अब एक दिन

भी यहाँ नहीं रह सकती। साल-भर तक तेरे खेतों में काम किया। तेरा जूठन खाया। बता, क्या-क्या नहीं किया ? अब ऐसा न बोल लाला, मेरे परान यहीं पर खतम हो जायेंगे ! मैं मर जाऊँगी, अपने बच्चे का मुँह देखे बिना ही !"

लाला का हृदय पसीज उठा। उसे ऊपर उठाते हुए बोले, "अच्छा, अच्छा, जा बाबा, तू जा ! अपन फारम चौपट होगा तो होने दे ! खेती नहीं करेगा, और का ? पर तू जा !" जेब से चार सौ रुपये निकालकर लाला ने उसकी हथेली पर धर दिये। रास्ते के खर्चे के लिए कुछ रुपये अलग से रख दिये, "लाला बुरा है, ऐसा किसी कू मत बोलना ! अच्छा तू जा !"

लाला के दिये अच्छे-अच्छे कपड़े-लत्ते गोमती ने यहीं छोड़ दिये। यहाँ की एक भी वस्तु वह साथ न ले गयी। धोती-कुरता परे हटाकर, उसने फिर अपनी परम्परागत आँगड़ी-पिछौड़ी पहन ली !

उन्नीस–

बकरी के तीन बच्चे कल रात बाड़े में से मेलियाबाघ उठा ले गया था। खुशाल परेशान था। इसी तरह बाघ आता रहा तो सारी की सारी बकरियाँ चौपट हो जायेंगी ! तब उसके 'तिजारत' का क्या होगा ? पण्डित बुधानन्द का अंकुश दिन प्रति दिन कसता चला जा रहा था। पर जब बकरियाँ ही शेष न रहीं तो फिर !

उसके नये आबाद 'पलोट' में गेहूँ-जौ की फ़सल कट रही थी। वहीं से थका-हारा रात को घर लौटा था। आशंका थी कि यदि रात में बारिश हुई, ओले गिरे तो अन्न का एक भी दाना घर न आ पायेगा। इसलिए जल्दी-जल्दी फ़सल काटकर, इकट्ठी कर लेने पर तुला था। पास-पड़ोस

के तीन-चार और औरत-मरद कल मदद के लिए पाली लगाकर आ रहे थे—सुबह-सुबह ! मँझली से अब चला-फिरा न जा रहा था ! फिर इत्ती सुबह, उदो होने से पहले रोटियाँ कैसे सेंक पायेगी....?

किवाड़ मूँदकर वह सोया ही था कि बाहर दरवाज़े खटखटाये जाने की जैसी आवाज़ सुनाई दी।

क्षण-भर के लिए आशंका हुई कि कहीं मेलियाबाघ ही दरवाज़े न टटोल रहा हो ! बिछौने पर से ही चिल्लाया वह, "अरे, कौन है रे ?"

पर प्रत्युत्तर में आवाज़ न आयी।

द्वार पर लटकी लोहे की मोटी साँकल उसी तरह खटखटाती रही—लगातार।

खुशाल बाहर निकले, दरवाज़ा खोले, इससे पहले उसने चाक के कठवाड़े की छोटी-सी खिड़की खोली। बाहर अँधियारे में झाँका, "हैं ला, कौन है तू ?"

किवाड़ की ओट छाया-सी खड़ी थी, "मैं—!"

खुशाल ने पहचाना नहीं, पर किवाड़ खोल दिये।

अन्धकार में सामने खड़ी नारी-प्रतिमा को देखते ही वह भय से चीखा, "कौन, गोमती ? तू तो मर गयी थी ?"

उसे गोमती का भूत समझकर खुशाल के रोंगटे खड़े हो गये, पर गोमती वैसी ही खड़ी थी। उसका मुँह ताकती रही, "हाँ, मर तो गयी थी, दुबारा जनम लेकर फिर आयी हूँ....!"

अब तक मँझली भी आ गयी थी। उसके दाहिने हाथ में चीड़ का जलता हुआ छोटा-सा छिलका था।

छिलके के मद्धम प्रकाश में गोमती की ओर भय-त्रस्त दृष्टि से दोनों ताकते रहे।

गरमी से झुलसकर शरीर का रंग काला पड़ गया था। देह भी शिथिल थी। बड़ी-बड़ी उदास आँखों के नीचे काली झाँइयाँ ! गोमती पहचानी तक न जा रही थी।

यह गोमती नहीं, गोमती का प्रेत है !

दोनों कांपते हुए हाथों से उसे बाहर धकेलकर किवाड़ बन्द करने लगे—

"तू जा ! मरकर अब यहाँ क्यों चली आयी ? सुना था कि तेरी सद्गति लधौंन के खिमुआँ ल्वार ने कर दी थी। पिण्ड-दान भी हो गये....!"

"तुझे नहीं करनी चाहिए थी मेरी सद्गति ? मेरा पति था न तू !" गोमती को सहसा क्रोध आ गया। दाँत पीसते हुए, उसने देखा तो वे दोनों कुछ पीछे हट गये, बचाव के लिए किवाड़ की आड़ में !

"मेरी सद्गति तो हो गयी, पर तुमारी कैसे होगी ? इसीलिए आयी हूँ आज ! घड़ी भरने की रकम चुकाये विना तूने मुझे अपने बेटे से मिलने न जाने दिया था न ! ले गिन रुपै ! पूरे बीस बीसी हैं न !" गोमती ने आँगड़ी की जेब में छिपायी गाँठी खोली और सारे रुपये उसके मुँह पर दे मारे, "ले गिन ले ! पूरे हैं न ! अब तो मैं तुझसे मुक्त हो गयी न ! डर मत, मैं तो खुद तेरी देहरी के भीतर पाँव नहीं रखूँगी अब....!"

जिस तरह गोमती आयी थी, उसी तरह अँधियारे में ओझल हो गयी !

बीस—

सूरज अभी-अभी उग रहा था। फड़का, मौनर के गाँवों को पार करती, नदी के रास्ते-रास्ते गोमती लधौंन की चढ़ाई हाँफती-हाँफती चढ़ रही थी कि गाँव के सब मरद सिर मुँडाये, जोस्यूड़ा की नदी से नहा-धोकर ऊपर आ रहे थे—मातमी सूर[illegible]।

मरी ह[illegible] को यों [illegible] [illegible] चौंक पड़े।

"तू तो मर गयी थी ! क्रिया-कर्म भी तेरे हो गये थे ! फिर तू कहाँ से चली आयी ?" भय से काँपते हुए किसी ने पूछा।

"तुम लोगों के लिए तो मैं जीते-जी मर गयी थी....।" उसका गला भर आया, "मर जाती तो ये पाप कौन भुगतता....?"

सिर मुँडाकर खिमु'का और भी नाटे लग रहे थे। गोमती को तनिक परे ले जाकर, रुँधे गले से बोले, "हमारा पिरमा कल रात मर गया ब्वारी ! तू एक दिन पहले आ जाती तो शायद यह सब न होता...."

गोमती जैसी खड़ी थी, वैसी ही अवाक् खड़ी रह गयी। न रोयी, न चिल्लायी—एक भी शब्द होंठों से फूटकर बाहर न निकला।

खिमु'का उसका हाथ पकड़ कर घर ले गये तो वह निष्प्राण-सी पीछे-पीछे चल पड़ी—मिट्टी के खिलौने की तरह !

"कल रात झोपड़ी में आग लगी और उसी में जल गया अभागा !" पास खड़े किन्हीं वृद्ध सज्जन का उदास स्वर था।

सचमुच झाड़ की झोपड़ी जल गयी थी। जले-अधजले काले खम्भे, काली ज़मीन पर आड़े-तिरछे गिरे थे। फटे-पुराने चीथड़े, काठ का टूटा सिन्दूक़, कमर पर बाँधने वाली कपड़े की पेटी, जिसे लाम पर जाते समय देवराम भूल गया था—सब जलकर राख हो गये थे। खूँटे पर पिरमा की फटी क़मीज़ का अधजला चीथड़ा हवा में झूल रहा था।

"इजा, तू आ गयी ?" कुन्नू उसकी ओर लपका तो उसने बाँहों में भर लिया, "बाज्यू को कल इन्होंने मार डाला इजा ! तू कहाँ चली गयी थी, हमें छोड़कर ?" वह सुबक-सुबककर रोने लगा।

खिमु'का की वृद्धा पत्नी गोमती को अपने घर ले गयी। घर के अँधियारे, एकान्त कोने में ले जाकर बोली, "तू, परमेसर की सौं खाकर, किसी से कुछ कहना नहीं बहू ! नहीं तो ये राकस हमें जिन्दा ही ज़मीन पर गाड़ देंगे !" फुसफुसाती हुई वह अपना मुँह उसके कान के पास ले गयी, "हमारे पिरमा की हत्या कर दी इन लोगों ने। कल ग्वाला गया था—गाय-डंगरों को लेकर। वहाँ से लौटते समय कलिया के बैल का पाँव

गर जाने के कारण, पता नहीं कैसे टूट गया था ! कलिया गुस्से
ता हुआ गया । न जाने क्या हो गया था उसे ? अँधियारे में ही
के सिर पर इतनी जोर से लाठी मारी कि वह वहीं पर चित्त हो
। पानी तक नहीं माँगा विचारे ने !

"यह क्या हो गया ? सोचते ही कलिया डर के मारे काँपने लगा ।
ी रात तक गाँव के बुजुर्ग-बूढ़ों को अपने घर में घेरकर पंचायत
ता रहा । पुलस-पटवारी का भय था । आदमी की हत्या के मामले में
रा गाँव उजड़ जाता, इसलिए पिरमा की लाश चुपके से घर में बाँधकर,
सपर मट्टी तेल छिड़ककर आग लगा दी उसने । कह दिया कि झोपड़ी
ं आग लगने के कारण जलकर मर गया विचारा !....ऐसे कुपचित
वाले हैं निठोर ! तेजुवा तो कहता था कि कुनुवाँ को भी जिन्दा ही आग
में डाल देते हैं, पर इसका अन्न-जल वाकी होगा । वाप के मरते ही यह
विचारा पता नहीं कहाँ भाग गया ! हे भगपती माई !" उसने अपने दोनों
हाथ जोड़े, "तू ने इस वालक के परान वचा दिये....!"

गोमती को जैसे काठ मार गया ! अव भी वह वैसी ही, विस्फारित
नेत्रों से देख रही थी—पगली-सी ।

कुछ क्षण उसी तरह खड़ी रहने के पश्चात् उसे न जाने क्या सूझा ?
कुन्नू का हाथ पकड़कर वावली-सी दौड़ी । कलिय'का के आँगन पर क्षण-
भर ठिठककर वोली, "कलिया कसाई, जिस तरह तूने मेरे कुनुवाँ के
वाप को जलाया, उसी तरह तुझे भी जिन्दा ही आग में भून-भूनकर न
जलाया तो मैं भी....मैं भी....मैं भी औरतजात नहीं !"

दाँत पीसती हुई गोमती जंगल की ओर निकल पड़ी । वाल विखेरे
थे, कपड़े अस्त-व्यस्त, पर उसे आज तनिक सुधि न थी । पगली-सी वह
जंगल की ओर वेतहाशा भाग रही थी ।

□

साँय-साँय कर साँझ बीती । रात आयी । पर गाँव में किसी के भी
कगार की आ

घर आज चूल्हा न जला। पिरमा की मौत पर मातम मनाने के लिए सबने छाक रखी—किसी ने भी खाना न खाया।

सब सो गये थे।

अमावस की-सी अँधियारी रात का तीसरा पहर भी अभी बीता न था कि आस-पास के गाँवों के सभी लोग सहसा जग पड़े।

दूर अन्धकार में उन्होंने बड़ी-बड़ी लपलपाती लपटें देखीं—आसमान को छूती हुईं। घास के घरौंदे धूँ-धूँ कर जलते हुए—जल-जलकर राख होते हुए!

बस्ती से दूर काल-भैरवी-सी विकराल बनी एक माँ अपने बच्चे का हाथ थामे अँधियारे में पता नहीं कहाँ जा रही थी? सुबह होने में शायद अभी कुछ समय था!



हमारे अन्य उपन्यास

उपन्यास	लेखक	मूल्य
मुट्ठी भर कांकर	जगदीशचन्द्र	१०.००
मुक्तिदूत (च. सं.)	वीरेन्द्रकुमार जैन	१३.००
जय-पराजय	सुमंगल प्रकाश	२६.००
पुरुप पुराण	डॉ. विवेकीराय	८.००
समुद्र संगम	डॉ. भोलाशंकर व्यास	१७.००
माटीमटाल-२ (पुर.)	गोपीनाथ महान्ती	२५.००
माटीमटाल-१ (पुर.)	गोपीनाथ महान्ती	२०.००
धूप और दरिया	जगजीत बराड़	६.५०
देवेश : एक जीवनी	सत्यपाल विद्यालंकार	१५.००
छाया मत छूना मन (पुर.)	हिमांशु जोशी	७.५०
मृत्युंजय	शिवाजी सावंत	४०.००
दायरे आस्थाओं के	सं. लिं. भैरप्पा	९.००
बारूद और चिनगारी	सुमंगल प्रकाश	२०.००
पूर्णावतार	प्रमथनाथ विशी	१५.००
आधा पुल (द्वि. सं.)	जगदीशचन्द्र	१४.००
नमक का पुतला सागर में	धनंजय वैरागी	१६.००
तीसरा प्रसंग	लक्ष्मीकान्त वर्मा	१२.५०
टेराकोटा	लक्ष्मीकान्त वर्मा	१४.००
आईने अकेले हैं	कृश्नचन्दर	५.००
कहीं कुछ और	डॉ. गंगाप्रसाद विमल	७.००

	लेखक	मूल्य
...खों में प्यास	वाणी राय	१०.००
...त्र	ग. मा. मुक्तिबोध	४.००
सहस्रफण (दू. सं.)	विश्वनाथ सत्यनारायण	१६.००
रणांगण	विश्राम बेडेकर	३.५०
कृष्णकली (ती. सं.)	शिवानी	१०.००
हँसली बाँक की उपकथा	ताराशंकर वन्द्योपाध्याय	१०.००
गणदेवता (पुर., ती. सं.)	,,	१८.००
अस्तंगता (दू. सं.)	,,	९.००
महाश्रमण सुनें : (दू. सं.)	'भिक्खु'	४.००
अठारह सूरज के पौधे	रमेश बक्षी	४.५०
जुलूस (ती. सं.)	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	८.००
जो (दू. सं.)	डॉ. प्रभाकर माचवे	४.००
गुनाहों का देवता (तेरहवाँ सं.)	डॉ. धर्मवीर भारती	१०.००
सूरज का सातवाँ घोड़ा (सातवाँ सं.)	,,	३.५०
पीले गुलाब की आत्मा (दू. सं.)	विश्वम्भर 'मानव'	६.००
अपने-अपने अजनबी (पाँचवाँ सं.)	अज्ञेय	५.००
पलासी का युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	५.००
ग्यारह सपनों का देश (दू. सं.)	सम्पा. : लक्ष्मीचन्द्र जैन	७.००
राजसी	देवेशदास, आई. सी. एस्.	५.००
शतरंज के मोहरे (पुर., चौथा सं.)	अमृतलाल नागर	१२.००
रक्त-राग (दू. सं.)	देवेशदास, आई. सी. एस्.	५.००
तीसरा नेत्र (दू. सं.)	आनन्दप्रकाश जैन	४.५०

